अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

जुलाई २०२३

कभी निराश मत होओ

अग्निशिखा जुलाई २०२३ वर्ष ५३, अंक १२, पूर्णांक ६३५

विषय-सूची

कभी निराश मत होओ

सन्देश/सम्पादकीय ३

श्रीअरविन्द के वचन ५
श्रीमाँ के वचन २६

पुरोधा

दैनन्दिनी ४१
मस्तीभरे दिनों की ख़्वाहिश है... (कविता) ४३
'सौ प्रतिशत ख़ुश रहो'... वन्दना ४४

अग्निशिखा
श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
वार्षिक शुल्क : एक वर्ष–२००रु.; तीन वर्ष–५८०रु.; पाँच वर्ष–९६०रु.
संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी
प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१
मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत
सम्पादिका : वन्दना
Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70
दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८
Email: info@aurosociety.org
Website: www. aurosociety.org

सन्देश

किसी भी प्रकार के निरुत्साह को अपने ऊपर हावी न होने दो और भागवत कृपा पर किसी प्रकार का अविश्वास न रखो। जो भी कठिनाइयाँ तुम्हारे बाहर हैं, जो भी दुर्बलताएँ तुम्हारे अन्दर हैं, यदि तुम अपनी श्रद्धा और अपनी अभीप्सा पर दृढ़तापूर्वक डटे रहो तो गुह्य शक्ति तुम्हें उनमें से पार निकाल लायेगी और तुम्हें यहाँ वापस ले आयेगी। यदि तुम विरोधों और कठिनाइयों से दबे हुए हो, यदि तुम लड़खड़ाते हो, यदि तुम्हारे लिए मार्ग बन्द प्रतीत होता है फिर भी अपनी अभीप्सा को पकड़े रहो; यदि कुछ समय के लिए श्रद्धा मेघाच्छन्न हो गयी है तो मन और हृदय में हमारी ओर मुड़ो और बादल छँट जायेंगे। बाहरी सहायता का जहाँ तक प्रश्न है, हम उसे तुम्हें देने के लिए पूरी तरह से तैयार हैं... परन्तु पथ पर डटे रहो—फिर अन्त में सारी चीज़ें अपने-आप खुल जायेंगी और परिस्थितियाँ आन्तरिक आत्मा के सामने झुक जायेंगी।

CWSA खण्ड २९, पृ. १०१ **श्रीअरविन्द**

सम्पादकीय : हर एक के जीवन में ऐसे पल आते ही रहते हैं जब सब कुछ के समाप्त हो जाने, खो जाने का-सा भाव उभर आता है और व्यक्ति निराशा या हतोत्साह के गर्त में फिसला चला जाता है। अपने इस अंक में हम श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ की कृतियों से चुने हुए कुछ ऐसे मोती लेकर आये हैं जो हमेशा आशा और साहस की आभा छटकाते रहते हैं, उनकी वाणी हमारे पथों पर चौमुखा दीया बन कर निरन्तर हमें रास्ता दिखलाती और हमारे हृदयों में प्रसन्नता, साहस और बल फूँकती रहती है ताकि हम अपनी उच्चतम सम्भावनाओं के गोमुख तक पहुँच जायें।

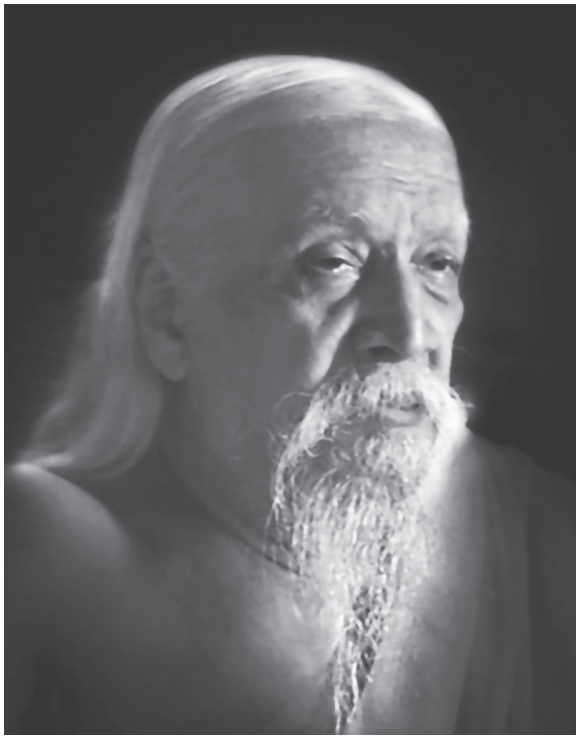

यह कभी न भूलो कि तुम अकेले नहीं हो। भगवान् तुम्हारे साथ हैं, तुम्हारी सहायता और तुम्हारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। 'वे' ऐसे साथी हैं जो कभी धोखा नहीं देते, ऐसे मित्र हैं जिनका प्रेम दिलासा देता और बल देता है। श्रद्धा रखो और वे तुम्हारे लिए सब कुछ कर देंगे।

'श्रीमातृवाणी', *खण्ड १४, पृ. १०*

श्रीअरविन्द के वचन

भागवत प्रकाश धरती पर झुका हुआ है

कम-से-कम एक सम्भावना तो है, एक ऐसा समय आता है, निश्चिति और विश्वास का ऐसा समय जब हमें अनुभव होता है कि जिसे हम 'मन' कहते हैं उससे कहीं अधिक महान् चेतना इस धरती पर है, और यह कि इस सीढ़ी पर और ऊपर चढ़ कर हम ऐसे स्थल पर पहुँच सकते हैं जहाँ भौतिक निश्चेतना, प्राणिक या मानसिक अज्ञान समाप्त हो जाते हैं; चेतना का सिद्धान्त अपने-आपको अभिव्यक्त करने में सक्षम हो जाता है जो आंशिक और अपूर्ण रूप से नहीं बल्कि मौलिक और सम्पूर्ण रूप से यहाँ बन्दी बने इन 'दिव्य प्रभु' को मुक्त कर, प्रकाश में ला सकता है। इस अन्तर्दर्शन के द्वारा क्रमविकास का प्रत्येक स्तर चेतना की ऊँची, निरन्तर ऊँची उठती हुई शक्ति का वास प्रतीत होता है जो शक्ति पार्थिव स्तर को ऊपर उठाती हुई नयी-नयी सम्भावनाओं के दृश्य खोल देती है, लेकिन अभी तक उच्चतम का नीचे उतरना बाक़ी है और उसके अवतरण के द्वारा ही पार्थिव अस्तित्व की पहेली सुलझ सकेगी और न केवल आत्मा बल्कि स्वयं 'प्रकृति' अपना चरम लक्ष्य पा लेगी। यही वह सत्य है जिसकी कौंधें इधर-उधर दीख पड़ती हैं, उन सन्तों और ऋषि-मुनियों ने अधिकाधिक पूर्ण रूप से इस सबके दर्शन किये जिन्हें तन्त्र ओजस्वी अन्वेषक अथवा भागवत जिज्ञासु कहेंगे, और यही चीज़ अब शायद अपने सम्पूर्ण प्रकाश तथा अनुभूति के साथ प्रस्तुति के प्रवेश-द्वार पर पहुँच रही है। तब इस संसार में संघर्ष, दुःख-दर्द और अन्धकार का चाहे जितना बड़ा पहाड़ क्यों न खड़ा हो, लेकिन हमें परम भव्यता की जो उपलब्धि होने वाली है उसके सामने अतीत में जो कुछ गुज़र गया वह उन शक्तिशाली तथा अभियानप्रिय व्यक्तियों के लिए सम्भवतः बहुत मायने नहीं रखे। बहरहाल, छायाओं के परदे खुल रहे हैं; उसके परे है वह 'भागवत प्रकाश' जो धरती पर झुका हुआ है और जो अभी तक सुदूर होते हुए भी ऐसी दीप्ति नहीं है जिसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सके या जिसे प्राप्त नहीं किया जा सके।

CWSA खण्ड २८, पृ. २५५

प्राणिक असन्तोष

ऐसा इसलिए हो रहा है क्योंकि प्राण अपनी कामनाओं इत्यादि के शिकंजे में बुरी तरह से जकड़ा हुआ था, और चूँकि अब वह व्यक्तिगत रूप से क्रिया कर रहा है, मानसिक इच्छा के अधीन नहीं है, इसलिए जब-जब उसकी कामनाएँ-वासनाएँ सन्तुष्ट नहीं होतीं वह इधर-उधर हाथ-पाँव मारता और रोता-धोता है। यह मानव-प्राण की सामान्य क्रिया होती है जब उस पर शासन नहीं किया जाता और मानसिक इच्छा के द्वारा उसे उसके स्थान पर बिठाये रखा जाता है।

*

वह भाग जो परिवर्तन की पुकार को सुनना नहीं चाहता, जो असन्तुष्ट रहता है, प्रतिरोध करता है (पूरी सत्ता नहीं) वही आगा-पीछा कर रहा है। जब-जब कोई प्राणिक तत्त्व निराश, असन्तुष्ट हो जाता है, उससे परिवर्तन के लिए कहा जाता या उसे विवश किया जाता है, लेकिन वह इच्छुक नहीं होता, तब-तब प्राण हड़ताल कर बैठता है, किसी भी प्रकार का कोई सहयोग नहीं देता और भौतिक को एकदम सुस्त या असंवेदनशील छोड़ देता है जिसमें प्राण का रत्ती-भर उत्साह नहीं होता। चैत्य-दबाव के द्वारा इस प्रतिरोध के अवशेष भी विलीन हो जायेंगे।

*

दो अवस्थाओं में प्राण इस तरह असहयोगी बन जाता है: १. जब उसके अहंकार की सामान्य क्रियाओं या उद्देश्यों को पूरा करने की अनुमति नहीं दी जाती, २. जब व्यक्ति भौतिक में बहुत नीचे उतर जाता है तब प्राण कभी-कभी या कुछ समय के लिए एकदम जड़-सा बन जाता है जब तक कि ऊपर की 'शक्ति' उस पर न उतरे।

*

ऐसा लगता है कि तुम्हारे शरीर पर कोई तमस् या निष्क्रियता नीचे तक उतर रही है। ऐसा कभी-कभी तब होता है जब प्राण अपनी अवस्था से असन्तुष्ट हो जाता है या उसने जो प्राप्त किया है उससे हताश हो जाता है, तब वह एक तरह का असहयोग या निष्क्रिय प्रतिरोध शुरू कर देता है और कहता है, "चूँकि मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ, मैं किसी भी चीज़ में रस नहीं लूँगा और न कुछ करने में तुम्हारी मदद ही करूँगा।"

प्राण के असन्तोष के लिए एकमात्र इलाज यह है कि उसकी बात पर कान न दो और अपने-आपको उससे एक करने से मना कर दो। जहाँ तक तमस् और जड़ता की बात है, तो स्वयं को उन विचारों में तल्लीन न कर लो बल्कि ऊपर मुड़ जाओ और 'प्रकाश' तथा 'शक्ति' को अपने अन्दर उतरने के लिए उनका आवाहन करो।

पीछे हट जाना

तुम्हें दुःख-दर्द, बेचैनी और डर की भावनाओं से पीछे हट जाना चाहिये, इस सबको एकदम से त्याग दो और जो-जो चीज़ प्रतिरोध कर रही हो उस पर शान्ति के साथ दृष्टि डालो और सभी नकारात्मक भावों को बदलने के लिए अपने संकल्प पर दृढ़ रहो, इस बात पर डटे रहो कि भागवत सहायता द्वारा अभी या बाद में तुम्हारा अभियान सफल होकर रहेगा क्योंकि भागवत सहायता तुम्हारा साथ कभी न छोड़ेगी। तब तुम शक्ति से सराबोर हो जाते हो और कठिनाइयों के पार चले जाते हो।

*

सभी मानव स्वभावों में यह एक तथ्य है—बेचैनी, कामना, व्यग्रता, निराशा, चञ्चलता। इन सबसे पीछे हट जाओ और इन्हें अपने ऊपर न शासन करने दो न ही इनसे विचलित ही होओ। प्राण का एक उचित या सही भाग होता है, तुम्हें उसी का उपयोग करना चाहिये—उत्साहपूर्ण, उच्चतर चीज़ों के प्रति संवेदनशील, महान् प्रेम तथा भक्ति के लिए समर्थ। इन सब चीज़ों को बढ़ाओ और इन्हें चैत्य का तथा शान्ति और विस्तार का टेका दो जो ऊपर से आते हैं।

*

माँ के प्रति खुलो, सभी चीज़ों को उन्हीं के पथ-प्रदर्शन में रखो, शान्ति, सहारा देने वाली शक्ति, सुरक्षा को अपने अन्दर पुकारो कि वे तुम्हारे अन्दर कार्य कर सकें तथा उन सभी ग़लत प्रभावों को त्याग दो जो ग़लत, लापरवाह तथा अचेतन क्रियाओं की रचना कर, रास्ते में आड़े आती हों।

इस सिद्धान्त का पालन करो और तुम्हारी सारी सत्ता शान्ति, आश्रयदायिनी 'शक्ति' तथा 'प्रकाश' के एकमेव नियम-तले एक हो जायेगी।
CWSA खण्ड ३१, पृ. १३८-४०, १४१-४३

प्रफुल्लता और प्रसन्नता

प्रफुल्लता साधना में नमक के समान है। यह उदासी से हज़ारों गुना बेहतर है।

*

अधिक प्रफुल्ल-प्रसन्न और विश्वस्त रहो। सेक्स और सन्देह तथा इसके साथी निस्सन्देह उपस्थित हैं, लेकिन तुम्हारे अन्दर भगवान् भी मौजूद हैं। अपनी आँखें खोलो और तब तक अपनी दृष्टि लगातार जमाये रखो जब तक परदा फट नहीं जाता और तुम 'उनके' या 'परम जननी' के दर्शन नहीं कर लेते।

*

प्रसन्न तथा प्रफुल्ल रहना—आध्यात्मिक रूप से इसमें कोई बुराई नहीं है, इसके विपरीत, यह तो उचित चीज़ है। रही बात संघर्षों तथा अभीप्सा की, तो प्रगति के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि अनिवार्यतः तुम संघर्षों का सामना करो; कई तो ऐसे लोग हैं जो संघर्षमय मनोभाव के इतने आदी हो जाते हैं कि वे सारे समय संघर्ष में ही लगे रहते हैं, और किसी काम के लिए उन्हें समय ही नहीं मिलता! यह वाञ्छनीय नहीं है। एक है सूर्यालोकित पथ और दूसरा है अन्धकारमय, उदासी-भरा पथ—सूर्यालोकित पथ ही वह पथ है जिस पर तुम श्रीमाँ पर पूरा भरोसा रख कर आगे ही आगे बढ़ सकते हो, तब तुम न किसी से भय खाओगे, न किसी चीज़ से दुःखी होओगे। अभीप्सा की आवश्यकता है, लेकिन एक ऐसी सूर्यालोकित अभीप्सा हो सकती है जो प्रकाश तथा श्रद्धा, विश्वास तथा हर्ष से भरपूर हो। भले कठिनाइयाँ आयें, उनका सामना भी तुम मुस्कान के साथ कर सकोगे।

*

हम तुम्हारे अन्दर हमेशा प्रफुल्लता चाहते हैं। चैत्य की प्रसन्नता ने अपना रास्ता खोज निकाला है, और चाहे जैसी कठिनाइयाँ आयें, वह प्रसन्नता निश्चय ही तुम्हें आगे बढ़ाती हुई लक्ष्य तक पहुँचा देगी। जब साधक के अन्दर निरन्तर यह उत्फुल्लता हो तो हम जानते हैं कि उसने बुरी-से-बुरी बाधा पर भी विजय पा ली है और अब वह सुरक्षित पथ पर डटा हुआ है।

*

प्रफुल्लता (मज़ाक करने और आमोद-प्रमोद की प्रसन्नता) प्राणिक

है। मैं यह नहीं कहता कि इसे नहीं होना चाहिये, लेकिन एक गभीरतर प्रफुल्लता होती है—*सुखहास्य*—जो प्रसन्नता की आध्यात्मिक अवस्था है। CWSA खण्ड ३१, पृ. १७३-७४

दुःख-दर्द

कुछ लोग कहेंगे कि विचित्र बात है कि मेरा योग दुःख-दर्द और कष्ट का अनुमोदन नहीं करता या ठोकरों और कठिनाइयों को बहुत गम्भीरता से नहीं लेता, जैसा कि तपस्वी करते हैं या वैष्णव विरह की टीस या मायावादी वैराग्य का अनुभव करते हैं, लेकिन फिर भी यहाँ आश्रम में कुछ साधकों के मन में ये पुराने विचार बसे हुए हैं और वे ही दुःखभरी शक्तियों को ले आते हैं और फिर वही होता है जो होता आया है...!

*

वह जो दुःख-कष्ट का आनन्द लेता है और उसे चाहता है, वह मानव प्राण होता है—इन्हीं चीज़ों को हम कपट और प्राण की विकृत मरोड़ कहते हैं; यह प्राण दुःख-कष्ट-कठिनाई के विरुद्ध हल्ला मचाता है और भगवान् से लेकर जीवन और दूसरे सभी लोगों पर उसे सताने और तड़पाने का दोष लगाता है, लेकिन दुःख-दर्द और कठिनाई का अधिकांश इसलिए आता और बना रहता है क्योंकि प्राण में कोई चीज़ इन्हें चाहती है! प्राण के इस तत्त्व को हमें पूरी तरह से खदेड़ बाहर निकालना होगा।

*

हाँ, ऐसा ही होता है (मनुष्य भगवान् की ओर नहीं मुड़ कर परोक्ष रूप से स्वयं ही कष्ट और दुर्गति को चुनते हैं)। यहाँ तक कि प्राणिक चेतना में भी कोई ऐसी चीज़ होती है जो जीवन में कष्टों के बिना स्वस्थ अनुभव नहीं करती। भौतिक दुःख-कष्ट से डरता और घृणा करता है, लेकिन प्राण तो उसे जीवन का एक खेल समझ कर उसमें भाग लेता है। CWSA खण्ड ३१, पृ. १७७-७८

विषाद का सामना करना

यह स्पष्ट है कि स्वयं को अधिकाधिक प्रतिष्ठित करने के लिए शक्ति और शान्ति तुम्हारे अन्दर उतर रही हैं। दूसरी भावनाएँ—दुःखी रहने की

इच्छा, ख़ुश होने का डर, असमर्थता और अनुपयुक्तता का भाव—ये सभी प्राणिक रचना की सामान्य क्रियाएँ हैं जो स्वयं तुम नहीं हो और ये क्रियाएँ ऊपर आने की कोशिश करती और तुम्हारे अन्दर बदलाव को आने से रोकती हैं। तुम्हें करना बस यही है कि इन सुझावों को स्वीकार करने की एकदम मनाही कर दो और स्वयं को अपने आन्तरिक 'सत्य' की ओर आग्रह के साथ मोड़ दो, यह चीज़ तुम्हें मुक्त कर देगी, प्रसन्न बना देगी, और तब सब कुछ अच्छा ही होगा।

*

तुमने जो लिखा उससे मुझे लगता है कि यह पुरानी प्राणिक अस्थिरता और उदासी में रस लेना है जिसने तुम पर अपनी पकड़ जमा ली है। इसका कोई विशेष कारण नहीं होता, लेकिन अपने पोषण के लिए यह हर चीज़ पर क़ब्ज़ा कर लेती है; अपने आपमें यह बस अभ्यासी स्नायविक कमज़ोरी होती है। जितना तुम इसके बारे में सोचते हो उतनी ही यह चीज़ बढ़ती जाती है। इस विषाद का सामना करने के तीन तरीक़े हैं। एक है, अपने ही बारे में सोचने की जगह किसी दूसरी चीज़ में रस लो, अपने-आपको उसी में रमा लो, और अपनी हालत के बारे में जितना कम-से-कम सोच सको उतना ही अच्छा। दूसरा है, जितना हो सके अपने-आपको इस प्राणिक अस्थिरता और विषाद से अलग कर दो और इसका सामना करो, जैसे कि तुम पहले कर रहे थे, बड़ी ऊर्जा और शक्ति के साथ तुमने दृढ़ता से इसे स्वीकार करने से मना कर दिया था। तीसरा है, श्रीमाँ की शान्ति को पुकारो और अपने मन को ऊपर उनकी ओर मुड़ने का अभ्यासी बना लो। नीचे उतरने के लिए वह शान्ति तुम्हारे ऊपर प्रतीक्षारत है कि कब तुम उसकी ओर खुलोगे; अगर वह नीचे उतर आये तो तुम हमेशा के लिए इस सारे दुःख-दर्द और कष्ट से छुट्टी पा लोगे।

CWSA खण्ड ३१, पृ. १८०-८१

अवसाद और उदासी

उससे कह दो कि निराशा एक ऐसी चीज़ है जिसे साधक को कभी हवा नहीं देनी चाहिये। व्यक्ति को निरन्तर पथ पर आगे ही बढ़ते रहना चाहिये चाहे उसकी गति धीमी हो या बाधापूर्ण अथवा द्रुत और आसान

—व्यक्ति हमेशा अपने समय पर लक्ष्य तक पहुँच जायेगा। कठिनाइयों और अन्धकार के कालों से बचा नहीं जा सकता—अचञ्चलता और साहस के साथ उनके पार निकलना ही होता है।

*

अवसाद हर एक में इसी तरह से काम करता है। वह इस या उस बहाने को पकड़ कर व्यक्ति पर छा जाता है, लेकिन सचमुच वह किसी विशेष कारण से नहीं बल्कि स्वयं अपनी ही सन्तुष्टि के लिए अन्दर आता है।

*

समस्त अवसाद बुरा होता है क्योंकि यह चेतना को नीचे गिरा देता, ऊर्जा को ख़र्च कर देता और व्यक्ति को प्रतिकूल शक्तियों के प्रति खोल देता है।

CWSA खण्ड ३१, पृ. १८२-८३

अवसाद के साथ बर्ताव कैसे किया जाये

स्वाभाविक है कि अगर प्राण शान्त हो और वह मन को चीज़ों को उचित रूप से देखने दे तो इस तरह का अवसाद कभी नहीं आयेगा।

*

छोटी-छोटी कामनाओं और दोषों को बढ़ा-चढ़ा नहीं देना चाहिये और न ही उन्हें चिन्ता या अवसाद का कारण ही बना देना चाहिये, लेकिन ऐसी चीज़ों पर नज़र ज़रूर रखनी होगी और चुपचाप इनसे पीछा छुड़ाना ही होगा।

*

हमेशा ध्यान रखो कि ऐसी क्रियाओं (जैसे खीज, नाराज़गी इत्यादि) को हमेशा अस्वीकार करो जो अस्त-व्यस्तता या अवसाद को वापस ले आती हैं। हाँ, व्यक्ति इन क्रियाओं से हमेशा बच नहीं सकता, लेकिन जब-जब ये आयें इन्हें अस्वीकार तो कर ही सकता है; जितना ज़्यादा ये अस्वीकृत होंगी उतना ज़्यादा इनके लिए घूम कर आना कठिन बनता जायेगा—या अगर ये आ भी जायें तो बस मिनट-भर के लिए तुम्हें पकड़ती हैं और फिर तुरन्त उनकी पकड़ छूट भी जाती है। इनमें रस लेने का मतलब ही है कि एक बार फिर इन्हें सच्ची चेतना पर परदा डाल देने का अवसर दे देना।

*

अवसाद में सुख मत लो, क्योंकि जो लोग योगाभ्यास करते हैं उन सबके साथ उनके अहंकार की कठिनाइयाँ लगी ही रहती हैं; लेकिन अगर उनकी अभीप्सा सच्ची हो तो उच्चतर चेतना हमेशा उस पर हावी हो जायेगी।

*

अपने अन्दर किसी भी प्राणिक अवसाद और दुःख को प्रवेश करने की अनुमति न दो, अवसाद में डूबी अवस्था को तो कभी नहीं। जहाँ तक बाहरी सत्ता का सवाल है, वह तो हमेशा, न केवल तुम्हारे अन्दर बल्कि हर एक में, एक ऐसा पशु है जिस पर क़ाबू पाना मुश्किल होता है। उसके साथ धीरज और शान्त तथा प्रसन्नचित्त अध्यवसाय के साथ लगे ही रहना होता है; उसके प्रतिरोध से कभी अवसन्न न होओ, क्योंकि इससे तो वह अधिक संवेदनशील, निराश और कठिन बन जाता है या फिर हतोत्साह होकर हाथ-पर-हाथ धरे बैठ जाता है। इसके बजाय उसके अन्दर सूर्यालोक का उत्साह जगाओ और उस पर चुपचाप हलका सा दबाव डालते रहो, और तब एक दिन तुम उसे 'भागवत कृपा' की ओर पूरी तरह से खुलता हुआ पाओगे।

CWSA खण्ड ३१, पृ. १८६-८७

इस तरह की उदासी (यह भाव कि जीवन निरर्थक है) को एकदम परे हटा देना चाहिये। जब तक जीवन प्रभु की ओर मुड़ा रहता है उसका हमेशा एक अर्थ होता है, चाहे व्यक्ति सफलता में से गुज़र रहा हो या कठिनाई में से। तुम्हें सुरक्षा ज़रूर दी जायेगी, लेकिन अवसाद को एकदम अलग हटा देना चाहिये ताकि तुम सुरक्षा को स्वीकार कर सको और सहायता तथा शक्ति का उपयोग कर सको।

*

इस योग का नियम यह है कि अवसाद को सिर पर चढ़ कर बोलने न दो, उससे अलग हट कर, उसका कारण ढूँढ़ो और फिर उस कारण से पीछा छुड़ाओ; क्योंकि कारण हमेशा अपने अन्दर ही होता है, सम्भवतः कहीं कोई प्राणिक दोष हो, कहीं कोई ग़लत क्रिया तुम पर हावी हो गयी हो या कोई तुच्छ-सी कामना अन्दर कुण्डली मारे बैठी हो—कभी तो उसका कारण कामना की सन्तुष्टि होता है, यानी तुम उस कामना में बह निकले,

तुमने उसे सन्तुष्ट कर दिया तो उदासी तुम पर छा जाती है और कभी उसे सन्तुष्ट न किया तो असन्तोष का बोलबाला छा जाता है। योग में किसी असन्तुष्ट कामना से कहीं अधिक दुःख देती है एक सन्तुष्ट कामना, सिर पर चढ़ी हुई एक ग़लत क्रिया।

तुम्हारे लिए आवश्यकता है कि अपने अन्दर अधिक गहराई में जिओ, उस बाहरी प्राणिक और मानसिक जीवन में कम रहो जो इन स्पर्शों के प्रति हमेशा खुला रहता है। अन्तरतम चैत्य सत्ता इन सबसे उत्पीड़ित नहीं होती; वह अपने प्रभु के बहुत समीप खड़ी रहती है और छोटी-छोटी सतही क्रियाओं को बाहरी चीज़ों की तरह ही देखती है जो सच्ची सत्ता के लिए विजातीय होती हैं।

CWSA खण्ड ३१, पृ. १८८-८९

अगर तुम्हारे अन्दर विकसित होती हुई यह श्रद्धा है कि जो कुछ हो रहा है वह होना ही था और यह कि 'प्रभु' जानते हैं कि तुम्हारे लिए सर्वोत्तम क्या है,—तो यह तो अपने-आपमें बहुत बड़ी चीज़ है; इसके साथ-साथ अगर तुम अपने मन का यह संकल्प भी जोड़ दो कि हमेशा अपना चेहरा लक्ष्य की ओर मुड़ा हुआ रखोगे और यह श्रद्धा-विश्वास भी कि तुम्हें तुम्हारे उसी लक्ष्य की ओर ले जाया जा रहा है, हालाँकि ऊपर कठिनाइयाँ, नकार और प्रतिवाद भले दिखायी दें, लेकिन साधना के लिए इससे अधिक अच्छी मानसिक नींव और कोई नहीं पड़ सकती। और अगर न केवल मन, बल्कि प्राणिक और भौतिक चेतना भी इस श्रद्धा-विश्वास से ओत-प्रोत हो सकें तो उदासी या विषण्णता का प्रवेश या तो असम्भव हो जायेगा या इतने स्पष्ट रूप में ऐसी वस्तु होगा जो तुम्हारे ऊपर बाहर से फेंकी गयी है, जो तुम्हारी अपनी चेतना की वस्तु बिलकुल नहीं है और इस कारण वह तुम्हारे ऊपर अपनी पकड़ कतई बनाये ही न रख पायेगी। इस तरह की श्रद्धा रखना चेतना के पलटाव की ओर बहुत सहायक पहला पग उठाना है जो व्यक्ति को बाहरी आभासी चीज़ों में रमे रहने की बजाय आन्तरिक सत्य दिखलाती है।

CWSA खण्ड ३१, पृ. १९५

इस बात में सच्चाई का पुट भी नहीं है कि भगवान् को पाने के लिए अन्तरात्मा का दुःख-दर्द से गुज़रना अनिवार्य होता है। वह तो अन्तरात्मा के अन्दर भगवान् के लिए पुकार उसे उनकी तरफ़ मोड़ देती है, और यह चीज़ किन्हीं भी परिस्थितियों में आ सकती है—समृद्धतम जीवन और उपभोग में, बाहरी विजय और सफलता की ऊँचाइयों पर, जिनमें किसी तरह का दुःख-दर्द और हताशा नहीं होतीं, या विकसित होते हुए प्रबोधन से, ऐन्द्रिय आवेश के बीच, कौंध की तरह—जैसा कि बिल्वमंगल के साथ हुआ था, इस बोध के द्वारा कि इस बाहरी जीवन—जिसमें मनुष्य अहंकार और अज्ञान में जीता है—इससे अधिक महान् और अधिक सत्य कोई चीज़ है। इनमें से किसी के भी साथ दुःख-दर्द और उदासी की पूँछ का होना ज़रूरी नहीं है। बहुत बार व्यक्ति पलट कर यह कहते हुए सुना गया है, "जीवन में सब कुछ बढ़िया है और खेल के रूप में भी यह बहुत रुचिकर है, लेकिन है यह बस एक खेल, आध्यात्मिक वास्तविकता जीवन, मन और इन्द्रियों से कहीं ज़्यादा महान् है।" वह पुकार चाहे जिस रूप में आये, सबसे अधिक आवश्यक है कि वह प्रभु की पुकार हो या प्रभु के प्रति अन्तरात्मा की पुकार, जो चीज़ें प्रकृति को सामान्यतया बाँधे रखती हैं उनकी बनिस्बत अन्तरात्मा की सच्ची पुकार के प्रति तब व्यक्ति का आकर्षण कहीं अधिक हो जाता है।

CWSA खण्ड ३१, पृ. २०२

विषाद

हताशा और आत्म-निन्दा की अतिशयता तथा असहायता का भाव—सभी ऐसे सुझाव होते हैं जो विरोधी शक्ति से आते हैं और इन्हें अन्दर आने की अनुमति कभी नहीं देनी चाहिये। जिन दोषों के बारे में तुम कह रहे हो वे सभी मानव-स्वभावों के सामान्य दोष हैं और प्रत्येक साधक की बाहरी सत्ता ऐसे दोषों से भरी पड़ी है; इनके बारे में सचेतन होना रूपान्तर के लिए बहुत आवश्यक है, लेकिन इसे करना होगा अचञ्चल मन, श्रद्धा तथा भगवान् के प्रति समर्पण के द्वारा, साथ ही होनी चाहिये उच्चतर चेतना के प्रति एक आश्वस्त अभीप्सा—ये सभी चैत्य सत्ता की चीज़ें हैं। बाहरी सत्ता का रूपान्तर ही योग का कठिनतम हिस्सा है और यह श्रद्धा, धीरज,

अचञ्चलता तथा आग्रही संकल्प की माँग करता है। इसी भाव के साथ तुम्हें इन सभी अवसादों को दूर फेंक कर, योग-पथ पर निरन्तरता और स्थिरता के साथ आगे ही आगे बढ़ते रहना चाहिये।

*

तुम्हारी चेतना के परिवर्तन के लिए मैं सब कुछ कर दूँगा—तुम्हें बस स्वयं को उद्घाटित रखना है। जितना सम्भव हो स्वयं को अचञ्चलता के साथ खुला रखो—मैं तुमसे बस इसी की माँग करता हूँ।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २०७

प्राण का भावुक भाग ही लोगों से लड़ाई-झगड़ा मोल लेता है, उनसे बातचीत बन्द कर देता है और यही समान भाग अपने उस 'मूड' की प्रतिक्रिया के रूप में उनसे बातचीत करना और सम्बन्ध का सुख पाना चाहता है। जब तक किसी व्यक्ति में यह गति होती रहती है तब तक वह बेपेंदी के लोटे की तरह इधर-से-उधर लुढ़कता ही रहता है। केवल तभी जब वह इस भावुकता से पीछा छुड़ा कर अपने सभी शुद्ध तथा पवित्र भावों को भगवान् की ओर मोड़ दे कि ये उतार-चढ़ाव ग़ायब हो जाते हैं और इनका स्थान एक शान्त सद्भावना ले लेती है।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २१०

इतनी ज़्यादा हाय-तौबा मचाने और परेशान होने के पीछे की वजह कितनी ओछी थी, लेकिन सचमुच इस कच्ची और नासमझ संवेदनशीलता की ही यह सारी मुश्किल है जो इतने छोटे से बहाने पर भड़क उठी—और यह संवेदनशीलता यहाँ रह रहे अधिकतर साधकों के लिए दुराग्रही बाधाओं में से एक बहुत बड़ी बाधा है। इसके दो इलाज हैं—श्रीमाँ पर चैत्य भरोसा रखना और इसके साथ-साथ रहता है समर्पण, उदाहरण के लिए यह कहना "वे जो चाहती हैं वही मेरे लिए सर्वोत्तम है", और उस विस्तार में जीना जिसका तुम अभी अनुभव कर रहे हो,—यह सच्चे स्व, सच्ची मानसिक, प्राणिक तथा भौतिक सत्ता का विस्तार है, जिस पर से ऐसी चीज़ें धूल की तरह झड़ जाती हैं, क्योंकि इनका किसी तरह का कोई महत्त्व नहीं होता।

एकमात्र करने-लायक़ चीज़ है—स्थायी रूप से विस्तार, शान्ति तथा

निश्चव-नीरवता में बने रहना और अहंकार को उसमें विलीन हो जाने तथा आसक्तियों को अपने अन्दर से झड़ जाने देना।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २११

अहं और अहम्मन्यता

हाँ, यही सही है—हमेशा स्मरण करते रहना और शान्ति तथा अचञ्चलता में निरन्तर बने रहना ताकि 'शक्ति' कार्य कर सके और 'प्रकाश' उतर सके। दैनन्दिन जीवन की छोटी-मोटी चीज़ें सतही चेतना पर चलती रहनी चाहियें, लेकिन उन्हें तुम्हारी चेतना में बहुत जगह नहीं लेनी चाहिये, जब तक कि 'शक्ति' तथा 'प्रकाश' अपना अधिकार न जमा लें और इन चीज़ों पर भी अपनी सीधी पकड़ न बना लें। वह अहं ही होता है जो इन चीज़ों को इतनी बड़ी जगह दे देता है—अहं को हतोत्साहित करना चाहिये। "मेरे लिए नहीं बल्कि भगवान् के लिए" इस मन्त्र को समस्त चेतना, विचार तथा क्रिया में विकसित होकर विधान बन जाना चाहिये। इसे एक झटके में, पूरी तरह से नहीं किया जा सकता, लेकिन जितनी जल्दी हो सके इसी को मन में आग्रही स्वर बन जाना चाहिये।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २१९

वह जो रास्ते में बाधा बन कर आ खड़ा होता है स्वभावतः हमेशा प्राणिक अहं ही होता है जो अपने अज्ञान और अपने अज्ञान के अभिमान के साथ आ खड़ा होता है और साथ में आ धमकती है अपने तमस् और अन्धकार के साथ भौतिक चेतना, ये ही चीज़ें परिवर्तन की हर एक पुकार पर नाक-भौं सिकोड़तीं और उसका हमेशा प्रतिरोध करती हैं, और साथ ही होती है इनकी वह निष्क्रियता जो किसी भी तरह का कष्ट उठाना पसन्द नहीं करती—क्योंकि वह निष्क्रियता उसी समान ढर्रे पर चलने, उन्हीं घिसी-पिटी पुरानी क्रियाओं को दोहराते रहने में ही आराम का अनुभव करती है और अधिकाधिक यही चाहती है कि किसी-न-किसी तरह सब कुछ उसके लिए कर दिया जाये, उसे किसी भी तरह की कोई तवालत उठाने की ज़रूरत ही न पड़े।

पहली चीज़ है, उचित आन्तरिक मनोभाव रखना—तुम्हारे अन्दर वह

है; बाक़ी बचता है, अपने-आपको बदलने का संकल्प और निम्न प्रकृति में जो कुछ अहंकार और तामसिक दुराग्रह का साथी है, उस सबको जागरूक रह कर देखना और उनका एकदम से त्याग कर देना। और अन्त में, अपनी सत्ता के प्रत्येक भाग में स्वयं को हमेशा श्रीमाँ के प्रति उद्घाटित रखना ताकि रूपान्तर की प्रक्रिया के मार्ग में कोई बाधा आ ही न पाये।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २२२

तामसिक अहं वह होता है जो अवसाद, दुर्बलता, तमस्, आत्म-निन्दा, क्रिया करने की, जानने या उद्घाटन करने की अनिच्छुकता, थकान, आलस, कुछ नहीं करने की इच्छा इत्यादि को सहारा देता है। राजसिक अहं के विपरीत, यह कहता है, "मैं इतना दुर्बल हूँ, इतना अन्धकारमय, इतना दुःखी, इतना उत्पीड़ित, इतना पिटा हुआ हूँ—मेरे लिए आशा की, सफलता की कोई गुंजाईश नहीं, मुझे हर चीज़ के लिए मना कर दिया जाता है, मुझे कोई सहारा नहीं देता—भला मैं यह कैसे कर सकता हूँ, वह कैसे कर सकता हूँ, मेरे अन्दर इसे करने की कोई शक्ति, कोई योग्यता नहीं है, मैं असहाय हूँ; मुझे मर जाना चाहिये, बस मैं निश्चेष्ट, चुपचाप पड़ा रहूँ और अपने भाग्य पर रोता रहूँ," इत्यादि, इत्यादि। निश्चित रूप से, ये सारे भाव एक साथ नहीं आते या हर एक के अन्दर यह सब कुछ नहीं आता; मैं तो बस इस चीज़ का एक सामान्य ख़ाका खींच रहा हूँ।

*

यह सब (आत्म-निन्दा और अवसाद) प्राण तथा अहंकार का सामान्य खेल होता है। वह प्राण ही है जो न दूसरों से बातचीत करने में, न ही अकेले रहने में सन्तोष पा सकता है—बातें करने में पहले उसे जो सन्तोष मिलता था उसे वह खो बैठा है, लेकिन पुरानी आसक्तियों को छोड़ देने की बात भी वह अपने-आपको समझा नहीं पा रहा है—अब भी वह उनसे बँधा हुआ है इसलिए अकेलेपन का आनन्द प्राप्त नहीं कर पा रहा है।

यह अहंकार ही है जो अपने-आपको बहुत महत्त्वपूर्ण समझता है और बिना बात का बखेड़ा खड़ा कर अपना डंका ख़ुद ही पीटता रहता है, लेकिन साथ ही, अवसाद, आत्म-निन्दा और यह भावना भी कि दूसरे मुझे नहीं चाहते, मेरा साथ नहीं पसन्द करते—अहंकार का ही एक रूप है। पहला

है राजसिक अहंकार और दूसरा है तामसिक अहंकार। हमेशा अपने में ही सीमित रहना और दूसरों की क्रियाओं को उसी हद तक पत्ता देना जहाँ तक वे तुम्हारा स्वार्थ पूरा करें—अहंकार का ही भयंकर रूप है। अहंकार से मुक्त व्यक्ति बन्द और सीमित नहीं रहता, न इस तरह की सँकरी चीज़ें उसे परेशान ही करती हैं। योग में तुम्हें इन चीज़ों से निर्लिप्त और उदासीन रहना चाहिये, बस साधना और भगवान् के बारे में सोचो तथा औरों के लिए तुम्हारा मनोभाव शान्त सद्भावना-भरा होना चाहिये, जिसमें न कोई माँग हो, न कोई प्रत्याशा। अगर व्यक्ति अब तक इस पर नहीं पहुँच सके, उसे दूसरी चीज़ पर पहुँचने का उद्यम करना चाहिये और दूसरी-दूसरी चीज़ों में रमे रह कर निम्न प्राण की क्रियाओं को चारा नहीं देना चाहिये।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २२५-२६

अहंकार की धुरी पर चलना

अहंकार को केन्द्र बना कर चलने वाला व्यक्ति चीज़ों को उसी रूप में अनुभव करता और उनका मूल्य आँकता है जिस रूप में वे उस पर प्रभाव डालती हैं। "क्या यह चीज़ मुझे प्रसन्नता देती है या अप्रसन्नता, मुझे हर्ष प्रदान करती है या पीड़ा, मेरे अभिमान, दर्प, महत्त्वाकांक्षा की ठकुरसुहाती करती है या उनको ठेस पहुँचाती है, मेरी कामनाओं को सन्तुष्ट करती है या उन पर कान ही नहीं धरती?" इत्यादि। निरहंकारी व्यक्ति चीज़ों को इस दृष्टि से नहीं देखता। वह यह देखता है कि चीज़ें अपने-आपमें क्या हैं, उनका अर्थ क्या है, उसके जीवन में वस्तुओं का क्या स्थान है—या फिर वह शान्त रहता और समता रखता है, प्रत्येक वस्तु के लिए भगवान् को याद करता है, या अगर वह क्रियाशील, कर्मठ हो तो यह देखता है कि चीज़ें किस तरह सेवा में लायी जा सकती हैं, जगत् के जीवन में उनका क्या स्थान हो सकता है या वह जिस उद्देश्य के लिए जी रहा है उसमें उनका किस तरह उपयोग किया जा सकता है, इत्यादि। ऐसे बहुतेरे दृष्टिकोण हो सकते हैं जिनके केन्द्र में अहंकार न हो।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २२८

हर्ष तब आता है जब तुम उचित वृत्ति अपनाओ। श्रीमाँ

प्रायः हर एक की तरह तुम्हारा स्वभाव भी बहुत अधिक अहंकेन्द्रित रहा है और साधना के प्रारम्भिक चरणों में प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अहंकेन्द्रित ही होता है। उसमें प्रमुख विचार हमेशा यही होता है—मेरी अपनी साधना, मेरा अपना उद्यम, मेरा अपना विकास, अपनी पूर्णता, अपनी सिद्धि इत्यादि। अधिकतर लोगों में यह भाव निश्चित रूप से होता है क्योंकि उस व्यक्तिगत प्रयास के बिना व्यक्ति के अन्दर पर्याप्त संकल्प या आगे बढ़ने का उत्साह नहीं रहता कि वह अपने अन्दर प्रारम्भिक परिवर्तन ला सके। लेकिन इनमें से कोई भी चीज़—विकास, पूर्णता या सिद्धि—अन्तिम पूर्णता तक नहीं पहुँचा सकती जब तक कि अहंकार-केन्द्रित मनोभाव ईश्वर-केन्द्रित मनोभाव में परिवर्तित नहीं हो जाता, जब तक वह मनोभाव भागवत चेतना का विकास, पूर्णता या सिद्धि नहीं बन जाता या इस शरीर में उस चेतना का संकल्प और साधन नहीं बन जाता—और यह तभी हो सकता है जब व्यक्ति का अहं इत्यादि गौण बन जाये और प्रभु के लिए भक्ति, प्रभु के लिए प्रेम; अपनी चेतना, अपने संकल्प, हृदय तथा शरीर में प्रभु के साथ ऐक्य उसका एकमात्र लक्ष्य नहीं बन जाये। उसके बाद बस बच रहता है —भागवत शक्ति के द्वारा भागवत संकल्प को चरितार्थ करना।

CWSA खण्ड ३१, पृ. २२९

श्रद्धा को विकसित करना

बस, इसी श्रद्धा को तुम्हें अपने अन्दर विकसित करने की आवश्यकता है—युक्ति-तर्क और साधारण समझ के साथ मेल खाने वाली यह श्रद्धा उत्पन्न करने की आवश्यकता है कि यदि भगवान् का अस्तित्व है और उन्होंने ही तुम्हें इस पथ पर बुलाया है, जैसा कि स्पष्ट है, तो निश्चय ही पीछे की ओर तथा आदि से अन्त तक हमेशा भागवत पथ-प्रदर्शन मौजूद रहेगा और सभी कठिनाइयों के बावजूद तुम अपने लक्ष्य पर अवश्य पहुँचोगे। असफलता का सुझाव देने वाली विरोधी शक्तियों की वाणियों को अथवा उनको प्रतिध्वनित करने वाली अधीरता की, प्राणिक जल्दबाज़ी की वाणियों को नहीं सुनना चाहिये। इस बात पर विश्वास नहीं करना चाहिये कि चूँकि महान् कठिनाइयाँ मौजूद हैं इसलिए सफलता नहीं मिल सकती अथवा जब अभी तक भगवान् नहीं दिखायी दिये तब वे कभी दिखायी नहीं देंगे, बल्कि

इस मनोभाव को ग्रहण करना चाहिये, जिसे किसी महान् और कठिन लक्ष्य पर अपना मन एकाग्र करने पर प्रत्येक व्यक्ति ही ग्रहण करता और कहता है कि "सभी कठिनाइयों के होते हुए भी मैं तब तक प्रयत्न करता रहूँगा जब तक कि सफल नहीं हो जाता।" और जिसमें भगवान् में विश्वास रखने वाला इतना और जोड़ देता है कि "भगवान् हैं और उन्हें पाने का मेरा प्रयास कभी विफल नहीं हो सकता। जब तक मैं उन्हें पा नहीं लेता तब तक मैं प्रत्येक चीज़ के अन्दर से होता हुआ आगे बढ़ता रहूँगा।"
CWSA खण्ड २९, पृ. ९४

निष्ठा

जब मैंने अन्तरात्मा के प्रकाश तथा भागवत पुकार के प्रति निष्ठावान् होने की बात कही थी तब मैं तुम्हारे अतीत की किसी चीज़ या तुम्हारी किसी भूल के बारे में नहीं कह रहा था। मैं बस सभी संकटों और प्रहारों में भागवत पुकार की महान् आवश्यकता के ऊपर ज़ोर दे रहा था—यह कि तुम्हें सभी ग़लत सुझावों, आवेशों, प्रलोभनों से सावधानी के साथ बचना चाहिये, 'सत्य' का दामन थामे रहना चाहिये और 'प्रकाश' के आदेशात्मक संकेत का पालन करना चाहिये। सभी शंकाओं और समस्त उदासी के सामने निरन्तर दोहराते रहना चाहिये, "मैं भगवान् का हूँ, मैं असफल नहीं हो सकता"; अशुद्धता तथा अयोग्यता के सभी सुझावों से कहना चाहिये, "भगवान् के द्वारा चुना हुआ मैं 'अमरता' का बालक हूँ; मुझे बस अपने तथा 'उनके' प्रति सच्चा रहना है—विजय सुनिश्चित है; अगर मैं गिर भी गया फिर भी निश्चित है कि मैं उठ खड़ा होऊँगा"; सभी कामनाओं को खदेड़ दो और किसी भी ओछे आदर्श के पीछे मत चलो, उन सभी से कह दो, "यही उच्चतम है, यही वह परम सत्य है जो मेरे अन्दर की अन्तरात्मा को सन्तुष्ट कर सकता है; मार्ग की सभी अग्नि-परीक्षाओं को पार करता हुआ, कसौटियों पर खरा उतरता हुआ मैं दिव्य यात्रा के अन्त तक जाऊँगा।" 'प्रकाश' तथा 'पुकार' के प्रति निष्ठावान् रहने का मेरा यही तात्पर्य है।
CWSA खण्ड २९, पृ. ९९

साहस की आवश्यकता

जिसके अन्दर जीवन और उसकी कठिनाइयों का धीरज और दृढ़ता के साथ सामना करने का साहस नहीं होता वह साधना की अधिक महान् आन्तरिक कठिनाइयों के पार तो कभी नहीं जा पायेगा। इस योग का सबसे पहला पाठ यह है कि अचञ्चल मन, दृढ़ साहस और भागवत शक्ति पर पूरा भरोसा रख कर जीवन और उसकी अग्नि-परीक्षाओं की कसौटी पर खरे उतरना।

*

यह सच है कि इस योग में महान् धीरज और अध्यवसाय की आवश्यकता होती है। दृढ़ाग्रही और धैर्यशील रहो और साधना के उद्देश्यों पर अपना ध्यान जमाये रखो, लेकिन उन्हें तुरन्त पा लेने के लिए अति-आतुर मत बनो। तुम्हारे अन्दर कार्य किया जाना है और वह किया जा रहा है; आग्रही श्रद्धा और विश्वास के मनोभाव को बनाये रख कर उसके सम्पन्न होने में मदद करो। सभी में सन्देह उठते हैं, मनुष्य के भौतिक मन के लिए ये स्वाभाविक हैं—उन्हें झाड़ फेंको। तुरन्त परिणाम पाने की अधीरता और अति-व्याकुलता तो मानव-प्राण की स्वाभाविक चीज़ें हैं; श्रीमाँ में दृढ़ विश्वास के द्वारा ही ये चीज़ें ग़ायब हो सकती हैं। प्रेम, उन माँ को भगवान् के रूप में देखने का विश्वास जिन्हें तुमने अपना जीवन समर्पित किया है —इसी विश्वास के बूते पर सभी प्रतिरोधी भावनाओं का सामना करो और कुछ समय बाद वे फिर तुम्हारे पास लौट कर नहीं आ पायेंगी।

कठिनाइयों का तो सामना करना ही होगा और जितनी प्रसन्नता के साथ उनका सामना किया जाये उतनी जल्दी तुम उन पर विजय पा लोगे। करने-लायक़ एकमात्र चीज़ है—सफलता का मन्त्र जपते रहो, विजय पर दृढ़ श्रद्धा रखो और अपना मूलमन्त्र बना लो, "मैं इसे पाकर रहूँगा, मैं इसे पाकर रहूँगा।" असम्भव? ऐसी कोई चीज़ ही नहीं है जिस पर तुम असम्भव का बिल्ला चिपका सको—हाँ, कठिनाइयाँ, मुश्किलें, बाधाएँ ज़रूर आती हैं, दीर्घसूत्रता भी अवश्य आयेगी, लेकिन कुछ भी असम्भव नहीं है। तुम जिस काम को करने का बीड़ा उठा लो उसे देर-सवेर चरितार्थ करके रहोगे—वह सम्भव बन जाता है। CWSA खण्ड २९, पृ. १११, ११६

कठिनाइयाँ, विक्षोभ तथा शान्ति

अभीप्सा करो, उचित मनोभाव के साथ एकाग्र होओ और, चाहे जैसी कठिनाइयाँ क्यों न आयें, तुम अपने निर्धारित लक्ष्य पर पहुँच कर रहोगे। तुम्हारी पृष्ठभूमि में जो शान्ति विराजमान है और तुम्हारे अन्दर जो "कोई अधिक सच्ची" चीज़ है, तुम्हें उसमें ही जीना सीखना होगा और यह अनुभव करना होगा कि तुम वही हो। बाक़ी चीज़ों को तुम अपना सच्चा स्व मत मानो बल्कि उन्हें इस रूप में देखो कि यह बदलता हुआ या बार-बार उठने वाला वह सतही प्रवाह है जो, जैसे ही सच्चा स्व प्रकट हो जायेगा, एकदम टिक नहीं पायेगा।

शान्ति ही सच्चा इलाज है, कठिन मेहनत में अपने-आपको लगा देने से तुम्हें अस्थायी आराम मिल सकता है—हालाँकि सत्ता के विभिन्न भागों के उचित सन्तुलन के लिए काम करना अनिवार्य होता है। तो पहला पग है—अपने सिर के ऊपर या आस-पास शान्ति का अनुभव करना; तुम्हें उसके साथ सम्पर्क साधना होगा और उसे तुम्हारे अन्दर उतर कर तुम्हारे मन, प्राण और शरीर को परिपूरित कर देना होगा ताकि तुम उस शान्ति में जी सको—क्योंकि यह शान्ति तुम्हारे अन्दर भागवत उपस्थिति का एक लक्षण है, और एक बार तुम्हारे अन्दर यह उतर आये तो उसके बाद बाक़ी सभी चीज़ें आनी शुरू हो जायेंगी।

वाणी में सत्य और विचारों में सत्य का होना बहुत महत्त्वपूर्ण है। जितना अधिक तुम यह अनुभव करोगे कि मिथ्यात्व तुम्हारा हिस्सा नहीं है, वह तुम्हारे अन्दर बाहर से आयी कोई चीज़ है, उतना अधिक उसे त्यागना और अस्वीकार करना तुम्हारे लिए सरल हो जायेगा।

डटे रहो और अब तक जो टेढ़ा-मेढ़ा, विकृत है वह सीधा हो जायेगा और तुम यह जान जाओगे तथा भागवत उपस्थिति के सत्य को ठोस रूप में अनुभव करोगे, और तब प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वारा तुम्हारी श्रद्धा का औचित्य सिद्ध हो जायेगा।

*

जब तक मन अशान्त और चञ्चल रहता है तब तक आन्तरिक 'सत्य' को प्राप्त करना सम्भव ही नहीं होता। निश्चल-नीरवता, शान्ति, अचञ्चलता —ये हैं पहली आवश्यक अवस्थाएँ तथा शर्तें।

अचञ्चल, अनुत्तेजित और शान्त रहना साधना की नहीं बल्कि सिद्धि की पहली शर्त है। बहुत ही कम लोग (बहुत ही कम, सौ साधकों में से शायद एक, दो, तीन या चार) इसे पहली ही बार में पा सकते हैं। अधिकतर को तो इसके कहीं आस-पास पहुँचने के पहले लम्बी तैयारी से गुज़रना होता है। यहाँ तक कि बाद में जब वे शान्ति और अचञ्चलता का अनुभव करना शुरू करते हैं तब भी उसे प्रतिष्ठित करने में समय लगता है—काफ़ी लम्बे समय तक वे शान्ति और बेचैनी के बीच झूलते रहते हैं जब तक कि स्वभाव के सभी हिस्से सत्य तथा शान्ति को स्वीकार नहीं कर लेते। इसलिए तुम्हारे यह सोचने का कोई कारण नहीं है कि तुम प्रगति नहीं कर सकते या लक्ष्य पर नहीं पहुँच सकते। तुम अपनी प्रकृति के उस एक हिस्से से बहुत परेशान हो जो अपने-आपको इन भावनाओं के प्रति खोलने का आदी हो गया है—श्रीमाँ से अलगाव का विचार और रिश्तेदारों से लगाव; शान्ति है साधना का आधार और यही तुम्हें अशान्त बना रही है क्योंकि यह इन चीज़ों को छोड़ने को राज़ी नहीं हो रही है—बस यही बात है। लेकिन सभी को अपनी प्रकृति के किसी-न-किसी हिस्से में ऐसी ज़िद्दी कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ता है, यहाँ तक कि सबसे अधिक सफल साधक भी इससे अछूते नहीं रहते। व्यक्ति को तब तक डटे रहना होता है जब तक कि प्रकाश आकर उस हिस्से पर विजय न पा ले।
CWSA खण्ड २९, पृ. १२५-२७

आध्यात्मिक प्रगति तथा बाहरी परिस्थितियाँ

आन्तरिक आध्यात्मिक प्रगति बाहरी अवस्थाओं पर इतनी निर्भर नहीं करती जितनी इस पर करती है कि आन्तरिक रूप से उनके प्रति हमारी कैसी प्रतिक्रिया होती है—समस्त आध्यात्मिक अनुभूति का यही सार है। यही कारण है कि हम उचित मनोभाव को अपनाने और उस पर दृढ़ता के साथ लगे रहने पर ज़ोर देते हैं, साधक ऐसी आन्तरिक अवस्था को धारण करे जो बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर न हो, वह समानता तथा अचञ्चलता की अवस्था हो, अगर वह आन्तरिक प्रसन्नता न पा सके तो उसे अधिकाधिक अपने अन्दर जाना होगा और अन्दर से बाहर की ओर देखना होगा, यह नहीं कि वह सतही मानसिक अवस्था में बना रहे जो जीवन के आघातों

और धक्कों की दया पर जीती है। केवल इसी आन्तरिक अवस्था को अपना कर साधक सामान्य जीवन से लोहा ले सकता है, विक्षुब्ध करने वाली शक्तियों का सामना करके उन्हें जीतने की आशा कर सकता है।

अन्दर से शान्त रहना, राह पर आगे ही आगे बढ़ते रहने का दृढ़ संकल्प रखना, कठिनाइयों तथा उतार-चढ़ावों से कभी विक्षुब्ध तथा हतोत्साह न होना—यह है पथ पर सीखने वाले पाठों में से एक।

CWSA खण्ड २९, पृ. १४०

भागवत कृपा में विश्वास

एक अटूट श्रद्धा-विश्वास जिसे कोई परिस्थिति या घटना भंग न कर सके। यदि कठिनाइयाँ आती हैं तो वे मानसिक सन्देह या तामसिक स्वीकृति को नहीं जगातीं, बल्कि इस सुदृढ़ विश्वास को उत्पन्न करती हैं कि सच्चा समर्पण होने पर भागवत शक्ति कठिनाइयों को हटा देगी, और इस विश्वास के साथ-साथ इस उद्देश्य में साधक उनकी ओर और अधिक मुड़ेगा और उन्हीं पर निर्भर रहेगा। जब साधक में पूर्ण श्रद्धा और समर्पण का भाव होता है तो उस समय दिव्य शक्ति को ग्रहण करने की क्षमता भी आ जाती है जो मनुष्य से यथार्थ कार्य कराती है और सही पद्धति ग्रहण कराती है और तब परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं और परिणाम दिखायी देने लगता है।

इस स्थिति पर पहुँचने के लिए आवश्यक चीज़ है, सतत अभीप्सा करते रहना, पुकारते रहना और आत्मोत्सर्ग करना और अपने अन्दर की या चारों ओर की जो चीज़ें पथ में बाधा डालती हैं उन सबका परित्याग करने का संकल्प बनाये रखना। कठिनाइयाँ तो आरम्भ में, और परिवर्तन के लिए जितने अधिक समय की आवश्यकता होगी उतने समय तक लगातार ही होंगी, परन्तु उनका सामना यदि सुस्थिर श्रद्धा, संकल्प तथा धैर्य के साथ किया जाये तो वे विलीन होने को बाध्य होंगी।

CWSA खण्ड २९, पृ. २३४

मुझे नहीं लगता कि कोई ज़रूरत से ज़्यादा मुस्कुरा सकता है। जो व्यक्ति सभी परिस्थितियों में मुस्कुराना जानता है, वह अन्तरात्मा की सच्ची समता के बहुत निकट है। *श्रीमाँ*

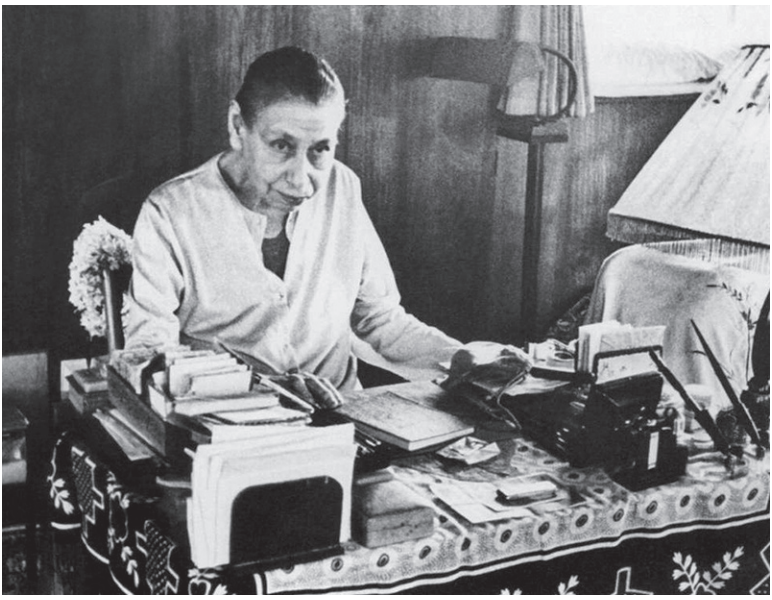

"हे परम और एकमात्र विश्वस्त सहचर, तू जो पहले से ही वह सब जानता है जो हम तुझसे कह सकते हैं क्योंकि तू ही तो उसका स्रोत है!

"हे परम और एकमात्र सखा, तू जो हमें स्वीकार करता है, हमसे प्रेम करता है और हमें वैसा ही समझता है जैसे कि हम हैं क्योंकि स्वयं तूने ही तो हमें ऐसा बनाया है!

"हे परम और एकमात्र पथ-प्रदर्शक, तू जो कभी हमारी उच्चतम इच्छा का प्रतिवाद नहीं करता क्योंकि उसके अन्दर तू ही तो इच्छा करता है!

"तेरे सिवा कहीं और किसी ऐसे को ढूँढ़ना मूर्खता होगी जो हमारी बात सुने, समझे, हमसे प्रेम करे और हमें मार्ग दिखाये, क्योंकि तू हमेशा हमारे आह्वान पर तैयार रहता है और हमें कभी धोखा नहीं देता!

"तूने मुझे पूर्ण निर्भरता के, पूर्ण संरक्षण के, बिना कुछ बचाये और बिना कोई रंग चढ़ाये, बिना किसी प्रयास या अवरोध के, सर्वांगीण रूप से समर्पण करने के सर्वोपरि आनन्द का, महान् आनन्द का बोध प्रदान किया है।

"बच्चे की तरह आनन्द के साथ मैं एक ही साथ तेरे आगे रोयी और हंसी, हे मेरे परम प्रिय!"। *श्रीमाँ*

श्रीमाँ के वचन

दुःख झेलना जानो

यदि किसी समय तुम्हें कोई गभीर दुःख, दारुण संशय या तीव्र कष्ट अभिभूत और हताश कर रहा हो तो शान्ति और स्थिरता पुनः प्राप्त करने का एक अचूक साधन है।

हमारी सत्ता की गहराइयों में एक ज्योति चमक रही है जो जितनी चमकदार है उतनी ही पवित्र भी। वह ज्योति विश्वव्यापी भगवान् का सजीव और सचेतन अंश है, वह जड़-तत्त्व को जीवन, पोषण और प्रकाश प्रदान करती है। वह उन लोगों की सशक्त और अचूक पथप्रदर्शिका है जो भगवान् का विधान जानने-मानने की इच्छा रखते हैं। जो उन्हें देखने की, उनकी आवाज़ सुनने की, उनके आदेश का पालन करने की अभीप्सा रखते हैं, यह आश्वासन और प्रेम से परिपूर्ण उनकी सहायिका है। उनके प्रति की गयी कोई भी सच्ची और स्थायी अभीप्सा व्यर्थ नहीं जा सकती; उन पर किया गया कोई भी दृढ़ और आदरपूर्ण विश्वास निराश नहीं हो सकता; कोई भी आशा भंग नहीं हो सकती।

मेरे हृदय ने भी दुःख झेला है और कातर पुकार की है, दुःख के भारी बोझ से टूटने-टूटने को होकर, अत्यधिक यन्त्रणा से दलित होकर...। पर, हे शान्तिदायक भगवान्, मैंने तुझे पुकारा, उत्कण्ठा से तुझसे प्रार्थना की और तेरी दीप्तिमान् ज्योति की प्रभा प्रकट हुई और उसने मुझे नवजीवन प्रदान किया।

जब तेरी महिमा की किरणों ने मेरे अन्दर प्रवेश कर मेरी सम्पूर्ण सत्ता को प्रकाशित कर दिया तो मैंने स्पष्ट देखा कि मुझे किस पथ पर चलना है और दुःख की क्या उपयोगिता हो सकती है; जिस दुःख ने मुझे निचोड़ डाला था वह इस पृथ्वी के दुःख, अतल वेदना और यातना की कितनी हलकी-सी परछाईं-मात्र है, यह मैंने समझा।

जो स्वयं दुःख भोग चुके हैं केवल वे ही दूसरों का दर्द समझ सकते हैं, उसमें हिस्सा बँटा सकते हैं, और उसे हलका कर सकते हैं। और मैं यह भी समझ गयी हूँ, हे शान्तिदायक भगवान्, हे परम आत्म-त्यागी, कि हमारे सब कष्टों के बीच हमें सहारा देने के लिए, हमारे सारे दुःख और

दर्द शान्त करने के लिए तूने पृथ्वी तथा मनुष्य के सकल दुःखों को, बिना किसी अपवाद के, जाना तथा अनुभव किया होगा।

पर फिर यह कैसी बात है कि जो तेरे पुजारी होने का दावा करते हैं, उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो तुझे यन्त्रणा देने वाला निर्दयी समझते हैं, तुझे ऐसा कठोर न्यायाधीश मानते हैं जिसने इन सब यन्त्रणाओं को स्वेच्छा से भले न रचा हो, पर जो इनका अनुमोदन तो करता ही है?

नहीं, मैं अब समझ रही हूँ कि ये सब कष्ट जड़-पदार्थ की अपूर्णता से आते हैं, जो अपनी अव्यवस्था और अपरिपक्वता के कारण तुझे अभिव्यक्त करने के अयोग्य है; और उससे सर्वप्रथम कष्ट भी तू ही पाता है, इससे असन्तुष्ट हो अपनी तीव्र उत्कण्ठा में तू ही सबसे पहले अव्यवस्था को व्यवस्था में, दुःख को सुख में, विरोध को सामञ्जस्य में परिवर्तित करने के लिए प्रयत्न और परिश्रम करता है।

कष्ट अनिवार्य नहीं है, वाञ्छनीय भी नहीं, पर जब वह आता है तो हमारे लिए कितना उपयोगी हो सकता है!

प्रत्येक बार जब दुःख के बोझ से हृदय टूटता प्रतीत होता है, तब अन्तर की गहराई में एक द्वार खुलता है और अधिकाधिक समृद्ध गुप्त रत्नराशि लिये नये-नये क्षितिज प्रकट होते हैं और उनकी स्वर्णिम आभा विनाश के कगार पर खड़े जीवन को एक नवीन और अधिक प्रखर जीवन प्रदान करती हुई आती है।

और जब इन उत्तरोत्तर अवतरणों से होता हुआ मनुष्य उस यवनिका तक पहुँचता है जिसके उठते ही साक्षात् 'तू' प्रकट होता है, तब, 'हे प्रभु', कौन वर्णन कर सकता है 'जीवन' की उस प्रखरता का जो समस्त सत्ता के अन्दर पैठ जाती है, 'ज्योति' की उस शोभा का जो उसे परिप्लावित कर देती है, 'प्रेम' की उस महिमा का जो चिरकाल के लिए उसका रूपान्तर कर देती है!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. २३-२४

परम आविष्कार

यह प्राचीन कथन ठीक था:

"हम और हमारा आदि स्रोत, हम और हमारे भगवान् एक हैं।"

इस एकत्व को केवल कम या अधिक घनिष्ठता और अन्तरंगता का सम्बन्ध नहीं, वरन् एक सच्चा तादात्म्य समझना चाहिये।

इस प्रकार, जो व्यक्ति भगवान् की खोज में, अगम्य शिखर की ओर सीढ़ी-पर-सीढ़ी चढ़ने का प्रयास करता है वह यह भूल जाता है कि उसका समस्त ज्ञान, उसकी समस्त अन्तर्दृष्टि उसे इस असीम की ओर एक पग भी आगे नहीं ले जा सकते, और वह यह भी नहीं जानता कि वह जिसे प्राप्त करना चाहता है और जिसे अपने से इतनी दूर समझता है, वह उसके अन्दर ही विद्यमान है।

और वह उस आदि स्रोत के विषय में कुछ जान भी कैसे सकता है जब तक कि वह अपने अन्दर उस स्रोत के बारे में सचेतन न हो जाये?

अपने-आपको समझ कर, अपने-आपको जानना सीख कर ही मनुष्य यह परम आविष्कार कर सकता है और तब आश्चर्यचकित होकर बाइबल के बिशप की भाँति बोल पड़ता है: "अरे, यहीं तो है भगवान् का आवास, और मैं जानता न था।"

इसलिए समस्त भौतिक जगत् की सृष्टि करने वाले इस उत्कृष्ट विचार को हमें व्यक्त करना होगा, समस्त पृथ्वी और आकाश में व्याप्त यह वाणी सबके कानों तक पहुँचानी होगी: "मैं प्रत्येक वस्तु में हूँ और प्रत्येक प्राणी में हूँ।"

जब सब लोग इस बात को जान जायेंगे तब वह दिन, जिसकी प्रतिज्ञा की गयी है, महान् रूपान्तर का वह दिन समीप आ जायेगा। मानव जब 'जड़-पदार्थ' के प्रत्येक अणु-परमाणु में उसके अन्दर रहने वाले 'भगवान्' की इच्छा को देखने लगेगा, प्रत्येक प्राणी में 'भगवान्' की किसी भंगिमा की ही झलक देखेगा, और जब प्रत्येक मानव अपने भ्राता के अन्दर 'भगवान्' को देख पायेगा तब उस उषा का उदय होगा जो उस अन्धकार, असत्य, अज्ञान, दोष और कष्ट को दूर भगा देगी, जो सारी 'प्रकृति' को अपने भार से दबाये हुए है। कारण: "दुःख भोगती और कराहती समस्त प्रकृति प्रतीक्षा कर रही है कि ईश्वर के पुत्र अपने-आपको कब प्रकट करेंगे।"

वास्तव में यही वह केन्द्रीय विचार है जिसमें अन्य सभी विचारों का सार आ जाता है। समस्त जीवन को आलोकित करने वाले सूर्य की भाँति इस विचार को हमारी स्मृति में सदा उपस्थित रहना चाहिये।

इसीलिए मैं आज इसकी याद दिला रही हूँ। कारण, यदि हम इस विचार को एक अत्यन्त दुर्लभ रत्न, अत्यन्त बहुमूल्य सम्पदा के समान हृदय में सँजो कर अपने पथ पर चलें, यदि हम इसे अपने अन्दर ज्योति प्रदान करने और रूपान्तर करने का कार्य करने दें, तो हम जानेंगे कि यह प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक प्राणी के मर्म में जीवन्त रूप से विद्यमान है और इसी के अन्दर हमें समस्त विश्व के आश्चर्यमय एकत्व की अनुभूति होगी।

और तब हमें बोध होगा कि हमारी तुच्छ तृप्तियाँ, हमारे मूर्खतापूर्ण लड़ाई-झगड़े, हमारे तुच्छ आवेग, हमारे अन्ध रोषावेश कितने व्यर्थ और बचकाने हैं! हम देखेंगे कि हमारी छोटी-छोटी दुर्बलताएँ पिघलती जा रही हैं, हमारे सीमित व्यक्तित्व की, हमारे निर्बोध अहंकार की अन्तिम मोर्चाबन्दियाँ भूमिसात् हो रही हैं। हमें अनुभव होगा कि हम सच्ची आध्यात्मिकता की महान् धारा में बहे जा रहे हैं, जो हमें हमारे सीमित ढाँचों से, हमारी संकीर्ण सीमाओं से मुक्त कर देगी।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. ४६-४८

यह उदात्त दिव्य प्रेम

भला क्या मूल्य है हमारे आवेगों और हमारी कामनाओं का, हमारी वेदनाओं और उग्रताओं का, हमारे दुःखों और संघर्षों का, हमारे सभी गहरे आन्तरिक उतार-चढ़ावों का जिन्हें हमारी अव्यवस्थित कल्पना अतिरञ्जित नाटकीय रूप दे देती है? क्या मूल्य है इनका उस महान्, उदात्त और दिव्य प्रेम के सामने जो हमारी सत्ता की अन्तरतम गहराइयों से हमारे ऊपर झुका रहता है, हमारी दुर्बलताएँ सहन करता है, हमारी भूलें सुधारता है, हमारे घाव भरता है, हमारी सम्पूर्ण सत्ता को अपनी नवजीवनदायिनी धाराओं से सराबोर कर देता है?

कारण, अन्तःस्थित भगवान् कभी दबाव नहीं डालते, न कोई दावा करते हैं और न भय दिखलाते हैं। वे तो निज का उत्सर्ग करते हैं, अपने-आपको दे देते हैं, वे सकल प्राणियों और सकल वस्तुओं के अन्दर छिपे हुए अपने-आपको भूले रहते हैं। वे कभी किसी को दोष नहीं देते, किसी के गुण-दोष का विवेचन नहीं करते, किसी को अभिशाप नहीं देते, किसी को दण्डित नहीं करते, बल्कि बिना दबाव डाले, बिना बुरा-भला कहे, निरन्तर

सुधारने में, बिना धैर्य खोये उत्साह प्रदान करने में और प्रत्येक को उसकी ग्रहणशक्ति के अनुसार सभी सम्पदाओं से समृद्ध कर देने में लगे रहते हैं। भगवान् माँ हैं, उनका प्रेम जीवन देता है, पोषण करता है, देखभाल और रक्षा करता है, परामर्श और सान्त्वना देता है। माँ सब समझती हैं, अतः सबको सहारा देती हैं, किसी का दोष नहीं पकड़े रखतीं, सबको क्षमा करती हैं, सबके लिए आशा रखती हैं, सबको तैयार करती हैं। वे सब कुछ अपने अन्दर धारण किये हुए हैं, अतः उनके पास ऐसा कुछ नहीं जो सबका न हो। चूँकि वे सब पर राज्य करती हैं, अतः सबकी सेवक हैं; इसी कारण वे सब छोटे-बड़े, जो उनके साथ राजा और उनके अन्दर देवता बनना चाहते हैं, उन्हीं की भाँति अपने भाइयों के सेवक बनते हैं, स्वेच्छाचारी शासक नहीं।

कितनी सुन्दर है सेवक की यह विनम्र भूमिका! यह भूमिका है उन सबकी जो सबके अन्दर विराजमान भगवान् को, सब वस्तुओं को जीवन देने वाले भागवत प्रेम को प्रकट करते हैं, उनकी घोषणा करते हैं।...

'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. ४९-५०

उनके लिए जो थके और गिरे हुए हैं

... तुम जो थके हुए, आहत, क्षत-विक्षत हो, तुम जो गिर पड़े हो, शायद हार मान बैठे हो, एक मित्र की बात सुनो। वह तुम्हारे दुःख जानता है, वह उन्हें भोग चुका है, वह तुम्हारी ही तरह पृथ्वी पर दुःख-ताप झेल चुका है, तुम्हारी ही तरह दिन का बोझ उठाये कितने ही रेगिस्तान पार कर चुका है। भूख और प्यास क्या है वह जानता है, निर्जनता और परित्यक्त अवस्था को पहचानता है, और सबसे अधिक क्रूर वस्तु, हृदय की रिक्तता को भी जानता है। आह! उसने संशय की घड़ियाँ भी जानी हैं, वह कितनी भूलों, त्रुटियों, विफलताओं और सब प्रकार की दुर्बलताओं के बीच से गुज़र चुका है।

पर वह तुमसे कहता है: साहस रखो! उस पाठ को ध्यान से सुनो जो उदीयमान सूर्य हर सुबह अपनी प्रथम किरणों के साथ पृथ्वी के लिए लाता है। यह आशा का पाठ है, सान्त्वना का सन्देश है।

तुम, जो रोते हो, कष्ट पाते हो, भय से काँपते हो, तुम, जिनमें यह

जानने का साहस नहीं कि तुम्हारे दुःखों की अवधि कितनी है, और तुम्हारे दुःख का क्या परिणाम है, देखो, ऐसी कोई रात नहीं जिसके बाद प्रभात न आये। जब अन्धकार सबसे घना होता है तभी उषा फूटने को तैयार रहती है; ऐसा कोई कुहासा नहीं जिसे सूर्य दूर न कर सके, ऐसी कोई बदली नहीं जिसे वह स्वर्णिम न कर दे, ऐसा कोई आँसू नहीं जिसे एक दिन वह सुखा न दे, ऐसा कोई तूफ़ान नहीं जिसके बाद उसका विजय-धनु चमक न उठे, ऐसा कोई हिम नहीं जिसे वह पिघला न दे, ऐसी कोई शीत-ऋतु नहीं जिसे वह रंगीन वसन्त में न बदल दे।

और इसी प्रकार तुम्हारे लिए भी ऐसी कोई विपत्ति नहीं जो प्रतिदान में अपने बराबर ऐश्वर्य न लाये, ऐसी कोई वेदना नहीं जो आनन्द में रूपान्तरित न हो सके, ऐसी कोई पराजय नहीं जो विजय में न बदल जाये, ऐसा कोई पतन नहीं जो उच्चतर उत्थान में परिणत न हो, ऐसी कोई निर्जनता नहीं जो जीवन का नीड़ न बने, ऐसी कोई असंगति नहीं जो संगति में न बदल सके। कभी-कभी दो मनों का मतभेद ही दो हृदयों को मिलने के लिए बाधित करता है। संक्षेप में, ऐसी असीम कोई दुर्बलता नहीं जो शक्ति में परिणत न हो सके। वरन् चरम दुर्बलता के अन्दर ही सर्वशक्तिमान् भगवान् प्रकट होना पसन्द करते हैं!

सुनो मेरे नन्हे बालक! तुम, जो आज स्वयं को इतना टूटा हुआ और पतित अनुभव करते हो, जिसके पास कुछ भी बाक़ी नहीं रहा, अपनी दरिद्रता ढकने के लिए, अपने गर्व का पोषण करने के लिए कुछ भी नहीं रहा, ऐसे तुम इतने महान् कभी नहीं थे! जो गहराई में जागता है, वह शिखर के कितने समीप होता है! कारण, खाई जितनी अधिक गहरी होती है, ऊँचाई उतनी ही अधिक प्रकट होती है!

क्या तुम नहीं जानते कि विश्व-सृष्टि की उदात्ततम शक्तियाँ अपने-आपको जड़-तत्त्व के गाढ़तम आवरण से ढकना चाहती हैं? कितना भव्य है यह गठबन्धन, एक ओर परम प्रेम, दूसरी ओर अत्यन्त तमोग्रस्त मिट्टी, एक ओर अन्धकार की कामना, दूसरी ओर सबसे अधिक ऐश्वर्यशाली प्रकाश!

यदि अग्नि-परीक्षाओं या त्रुटियों ने तुम्हें पछाड़ दिया है

यदि अग्नि-परीक्षाओं या त्रुटियों ने तुम्हें पछाड़ दिया है, यदि तुम दुःख

के अथाह गर्त में डूब गये हो तो ज़रा भी शोक न करो, क्योंकि वस्तुतः वहीं पर तुम्हें मिलेगा भगवान् का स्नेह, उनका परम आशीष! क्योंकि तुम पावनकारी दुःखों की अग्नि में तप चुके हो, इसलिए अब तुम्हें गौरवमय शिखर मिलेंगे।

तुम बंजर बीहड़ में हो: तो सुनो नीरवता की वाणी। बाहर की स्तुति और प्रशंसा का कलरव ही तुम्हारे कानों को सुख देता रहा है; अब नीरवता की वाणी तुम्हारी आत्मा को सुख देगी, तुम्हारे अन्दर जाग्रत् करेगी गहराइयों की प्रतिध्वनि, दिव्य स्वर-संगतियों का नाद!

तुम गहन रात्रि में चल रहे हो: तो रात्रि की अमूल्य सम्पदा संग्रह करते चलो। सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश बुद्धि के मार्ग आलोकित कर देता है, किन्तु रात्रि की श्वेत प्रभा में पूर्णता के गुप्त पथ दृष्टिगोचर होते हैं, आध्यात्मिक सम्पदाओं का रहस्य खुलता है।

तुम नग्नता और अभाव के मार्ग पर हो: यह प्रचुरता का मार्ग है। जब तुम्हारे पास कुछ न बचेगा तो तुम्हें सब कुछ दिया जायेगा। क्योंकि जो सच्चे और सीधे हैं उनके लिए बुरे-से-बुरे में से सदा भले-से-भला निकल आता है।

ज़मीन में बोया हुआ एक दाना हज़ारों दाने पैदा करता है। दुःख के पंखों का प्रत्येक स्पन्दन गौरव की ओर ले जाने वाली उड़ान बन सकता है।

और जब शत्रु मनुष्य पर क्रुद्ध हो टूट पड़ता है, तो वह उसके नाश के लिए जो कुछ करता है, वही उसे महान् बनाता है।

नाना लोकों की कहानी ध्यान से सुनो, देखो: प्रचण्ड शत्रु विजयी होता दिखायी देता है। वह प्रकाश के जीवों को रात्रि के अन्धकार में फेंकता है और रात्रि तारों से भर जाती है। वह विश्व की गतिविधि के विरुद्ध घोर आक्रोश से भर उठता है, आदि-मण्डल के साम्राज्य की अखण्डता पर आक्रमण करता है, उसकी समस्वरता को तोड़-फोड़ देता है, उसका विभाजन करता और छोटे-छोटे टुकड़े कर डालता है, उसकी धूल को अनन्त की चारों हवाओं में बिखेर देता है। और लो देखो! वही धूल सुनहले बीजों में परिणत हो जाती है, अनन्त को उर्वर बनाती है और उसे नाना भुवनों से भर देती है; ये भुवन अब अपने शाश्वत केन्द्र के चारों ओर विशालतर व्योम-मण्डल में घूमते रहेंगे। इस प्रकार विभाजन ही एक

अधिक समृद्ध और अधिक गभीर एकत्व लाता है और भौतिक जगत् के धरातलों को बढ़ाता हुआ उसी साम्राज्य को विस्तृत कर देता है जिसे वह नष्ट करने चला था।

निःसन्देह, असीम के वक्षस्थल पर झूलते आदि-मण्डल का गान सुन्दर था। पर उससे भी कितना अधिक सुन्दर और विजयोल्लासपूर्ण है ग्रह-नक्षत्रों का समवेत राग, भुवनों की संगीत-लहरी, उनकी विराट् सहगान-ध्वनि जो आकाश में विजय का शाश्वत संगीत गुञ्जायमान कर रही है!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. ५०-५३

शान्त-अचञ्चल बने रहने का उत्तम साधन

वास्तव में, विशुद्ध अहंकारपूर्ण हेतु से भी शान्त-स्थिर बने रहने तथा अपनी दुश्चिन्ता को घटा कर कम-से-कम कर देने का उत्तम साधन है अच्छा काम करना, सच्चा होना, सरल होना और न्यायपरायण होना। और इसके साथ-साथ यदि कोई बिना लेखा-जोखा किये और स्वार्थ-बुद्धि से निष्काम और अनासक्त हो सके, तो फिर उसके लिए वास्तव में ख़ुश रहना सम्भव हो जायेगा।

तुम अपने कर्मों से उत्पन्न वातावरण को अपने साथ, अपने चारों ओर, अपने अन्दर लिये फिरते हो, और तुम जो कुछ करते हो वह यदि सुन्दर, भला और सुसमञ्जस हो तो तुम्हारा वातावरण भी सुन्दर, अच्छा और सुसमञ्जस बना रहेगा, दूसरी ओर यदि तुम क्षुद्र स्वार्थपरता में, अविवेकपूर्ण आत्म-हितचिन्तन में, निष्ठुर अशुभ इच्छा में निवास करो तो तुम अपने जीवन के प्रत्येक मुहूर्त उसी में साँस लोगे और उसका अर्थ होगा, दुःख, निरन्तर बेचैनी; उसका अर्थ होगा, ऐसी बीभत्सता जो अपनी ही बीभत्सता के कारण निराशा में पैठ जाती है।

और यह न सोचो कि इस शरीर को छोड़ देने पर तुम इस वातावरण से मुक्त हो जाओगे; बल्कि शरीर तो अचेतना के एक परदे-जैसा है जो दुःख-क्लेश की तीव्रता को कम कर देता है। यदि तुम शरीर के संरक्षण से रहित होकर अत्यन्त स्थूल प्राणिक जीवन में चले जाओ तो दुःख-कष्ट बहुत अधिक तीव्र हो जायेगा और फिर तुम्हें ऐसा सुयोग नहीं मिलेगा कि जो बदलने-लायक़ है उसे बदल दिया जाये, जो संशोधन-योग्य है उसे

संशोधित कर दिया जाये, एक अधिक उच्च, अधिक सुखमय और अधिक ज्योतिर्मय जीवन तथा चेतना की ओर अपना उद्घाटन किया जाये।

तुम्हें अपना काम यहीं शीघ्र कर लेने की कोशिश करनी चाहिये, क्योंकि वास्तव मे वह यहीं हो सकता है।

मृत्यु से किसी चीज़ की आशा मत करो। जीवन ही तुम्हारे लिए मुक्ति है। बस, जीवन में रह कर ही तुम्हें अपने-आपको रूपान्तरित करना चाहिये।

इस पृथ्वी पर ही तुम उन्नति कर सकते हो और इस पृथ्वी पर ही सिद्धि पा सकते हो। इस शरीर में ही तुम 'विजयश्री' को अधिकृत कर सकते हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २११-१२

चेतना में ऊपर उठो

ऐसे लोग हैं जो निराशा में, आँसूभरे, उस अवस्था में आते हैं जिसे वे भीषण मनोवैज्ञानिक यातना कहते हैं; जब मैं उन्हें ऐसा देखती हूँ तो अपनी चेतना में, जो तुम सबको अपने में समाये हुए है, एक सूई को ज़रा-सा घुमा देती हूँ, और जब वे वापस जाते हैं तो अपने-आपको बिलकुल स्वस्थ पाते हैं। यह सूई ठीक कम्पास की सूई की तरह है : अपनी चेतना में तुम उसे घुमा-भर दो और सारा दुःख समाप्त हो जाता है। निस्सन्देह, वह बाद में अभ्यासवश दोबारा आ जाता है। ये साबुन के बुलबुलों के सिवा और कुछ नहीं।

मैंने भी यातनाओं को जाना है, लेकिन मेरे अन्दर हमेशा एक ऐसी चीज़ रहती थी जो तटस्थ होकर पीछे रहना जानती थी।

इस दुनिया में केवल एक ही चीज़ है जो मुझे अभी तक असह्य लगती है, वह है भौतिक विकृति, शारीरिक दुःख-दर्द, कुरूपता, प्रत्येक सत्ता में निहित सौन्दर्य की सम्भावना को अभिव्यक्त करने की अक्षमता। पर एक दिन इस पर भी विजय प्राप्त कर ली जायेगी।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ३१२

कल्पना को संयम में रखना

मैं ऐसे लोगों को जानती हूँ जिनके स्वभाव में इतने विपरीत, विरोधी पक्ष होते हैं कि एक दिन तो वे शानदार, उज्ज्वल, बलवान्, स्वयं को चरितार्थ

कर सकने वाली रचना बना सकते हैं और अगले दिन, पराजयवादी, अन्धकारमयी, काली रचना—निराशा की रचना—और फिर दोनों-की-दोनों बाहर निकल जाती हैं। और मैं परिस्थितियों के दौरान सुन्दर संरचना को मूर्त होते देख रही थी और जब वह मूर्त हो रही थी तभी अँधेरी रचना उस सबको ढा रही थी जो पहली ने बनाया था। और यह जैसे जीवन के छोटे ब्योरों में होता है वैसे ही महान् क्षेत्रों में भी होता है। और यह सब इसलिए कि व्यक्ति सोचते हुए अपने पर नज़र नहीं रखता, क्योंकि वह अपने-आपको इन विरोधी गतियों का ग़ुलाम मान लेता है, क्योंकि वह कहता है : "ओह! आज तो मेरी तबीयत ठीक नहीं है; ओह! आज तो सब कुछ उदास-उदास लग रहा है," और वह यह बात इस तरह कहता है मानों यह अवश्यम्भावी विपदा हो जिसके विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकता। पर कोई यदि एक क़दम पीछे हट कर खड़ा हो या ज़रा ऊपर चढ़ जाये तो वह इन सब चीज़ों पर नज़र डाल सकता है, उन्हें यथास्थान रख सकता है, कुछ को रख सकता है, अवाञ्छनीय चीज़ों को नष्ट कर सकता है या उनसे पिण्ड छुड़ा सकता है और अपनी सारी कल्पना-शक्ति को—जो कल्पनाशील कहलाती है—केवल उसके लिए लगा सकता है जो उसे चाहिये, जो उसकी उच्चतम अभीप्सा के साथ मेल खाती हो। मैं इसे ही कल्पना का संयम कहती हूँ।

यह बड़ा रोचक है। जब कोई इसे करना सीख लेता है और नियमित रूप से करता है तो उसके पास ऊबने के लिए समय नहीं रह जाता।

और व्यक्ति समुद्र की लहरों पर तैरते, निरुपाय भाव से हर लहर के थपेड़े खाते, इधर-उधर नाचते कॉर्क के समान न रह कर एक पंछी बन जाता है जो अपने पंख खोलता है, लहरों के ऊपर उड़ान भरता है और जहाँ चाहे चला जाता है। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ९, पृ. ४२२-२३

सबसे अधिक भौतिक चेतना, सबसे अधिक भौतिक मन हमेशा मार खाकर काम करने का, प्रयास करने का, आगे बढ़ने का अभ्यस्त है; अन्यथा यह तमस् में बना रहता है। और फिर यह जहाँ तक कल्पना कर सकता है, यह हमेशा कठिनाइयों की ही कल्पना करता है—हमेशा रुकावट या हमेशा विरोध की कल्पना—और इससे गति भयंकर रूप से धीमी पड़ जाती

है। उसे यह विश्वास दिलाने के लिए कि उसकी सब कठिनाइयों के पीछे 'कृपा' है, सभी असफलताओं के पीछे 'विजय' है, उसके सभी दुःखों, कष्टों और विरोधों के पीछे 'आनन्द' है, उसे बहुत ठोस, गोचर और *बार-बार दोहरायी जाने वाली* अनुभूतियों की, सभी प्रयासों में इसी एक प्रयास को दोहराने की ज़रूरत होती है; हमेशा तुम्हें निराशावाद को रोकने की, सन्देह को दूर हटाने की या पराजयवादी की कल्पना को बदलने की ज़रूरत है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. २

पीछे हटना

तुममें से अधिकतर लोग अपनी सत्ता के ऊपरी भाग में रहते हैं और बाहरी प्रभाव के स्पर्श के लिए खुले होते हैं। तुम लोग इस प्रकार रहते हो मानों अपने शरीर से बाहर निकले हुए हो और जब तुम ऐसे किसी अप्रिय व्यक्ति से मिलते हो जो वैसे ही निकला हुआ होता है, तब तुम उद्विग्न हो उठते हो। इस सारी तकलीफ़ का कारण यह होता है कि तुम पीछे की ओर हट आने के अभ्यासी नहीं होते। तुम्हें हमेशा अपने अन्दर की ओर वापस हट आना चाहिये—अन्दर गहराई में पैठ जाना सीख लो—पीछे हट जाओ और तुम सुरक्षित हो जाओगे। बाहरी जगत् में जो सतही शक्तियाँ काम कर रही हैं उनके हाथों में अपने-आपको मत छोड़ो। अगर तुम्हें कोई कार्य बहुत जल्दी भी करना हो तो एक क्षण के लिए पीछे हट आओ, तब तुम देखोगे और आश्चर्यचकित हो जाओगे कि कितनी जल्दी और कितनी अधिक सफलता के साथ तुम्हारा काम पूरा हो जाता है। अगर कोई तुमसे नाराज़ हो तो उसके क्रोध के स्पन्दनों के जाल में मत फँस जाओ, बल्कि पीछे की ओर हट-भर आओ और उसका क्रोध कोई आधार या प्रत्युत्तर न पाने के कारण काफ़ूर हो जायेगा। सर्वदा अपनी शान्ति बनाये रखो, उसे खोने के सभी प्रलोभनों से बचो। बिना पीछे हटे कभी कोई निर्णय मत करो, बिना पीछे हटे कभी एक शब्द तक मत बोलो, बिना पीछे हटे कभी किसी काम में मत कूदो। सामान्य संसार से सम्बन्धित जो कुछ भी है वह सब क्षणिक और नश्वर है, इसलिए उसमें ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसके कारण तुम्हें बेचैन होने की ज़रूरत हो। जो कुछ स्थायी, सनातन, अमर और अनन्त है—वही वास्तव में इस योग्य है कि हम उसे पायें, जीतें,

अपने अधिकार में रखें। और वह है 'दिव्य ज्योति', 'दिव्य प्रेम', 'दिव्य जीवन'—फिर वही है 'सर्वोच्च शान्ति', 'पूर्ण आनन्द' और पृथ्वी पर प्राप्त 'समस्त प्रभुत्व' जिसकी मुकुट-मणि है 'पूर्ण अभिव्यक्ति'। जब तुम समझ जाओगे कि सभी वस्तुएँ सापेक्ष हैं, तो कुछ भी क्यों न घटे, तुम पीछे हट सकोगे और वहाँ से उसे देख सकोगे; उस समय तुम शान्त-स्थिर रह कर भागवत शक्ति को पुकार सकते और उत्तर की प्रतीक्षा कर सकते हो। उस समय तुम ठीक-ठीक यह जान जाओगे कि तुम्हें क्या करना चाहिये। अतएव, याद रखो कि जब तक तुम बहुत शान्त-स्थिर नहीं हो जाओगे तब तक तुम उत्तर नहीं पा सकोगे। इस आन्तरिक शान्ति का अभ्यास करो, कम-से-कम छोटा-सा आरम्भ कर दो और तब तक अभ्यास करते रहो जब तक तुम्हें शान्त रहने की आदत न पड़ जाये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १७१-७२

अपने अन्दर झाँको

बहिर्मुख मत होओ। हमेशा अपने अन्दर झाँको और वहाँ तुम्हें 'प्रेम', 'शान्ति', 'प्रकाश' तथा 'बल' मिलेंगे।

यहाँ तक कि 'सत्य' भी प्रेम के बिना अभिव्यक्त नहीं हो सकता। केवल प्रेम के द्वारा ही सत्य अभिव्यक्त होता है। प्रेम है वह अग्नि जो हृदय की गहराइयों में धधकती है। केवल प्रेम ही उद्धार कर सकता है। और जगत् केवल प्रेम के प्रति ही उद्घाटित होगा। मैं हमेशा प्रभु से प्रार्थना करती हूँ, "हे परम प्रभो, 'अपने प्रेम' को अभिव्यक्त करो..." 'कृपा' हमेशा रहती है। अगर तुम अन्दर जाओ और वहाँ प्रेम को प्राप्त कर लो, तब वहाँ कोई 'मैं', कोई 'तुम', कोई 'प्रभु', 'कोई' भी न होगा, बस होगा प्रेम और वही प्रेम बल तथा धैर्य प्रदान करता है। प्रेम शाश्वत है और तुम्हें कभी असफल नहीं करता। बाहरी जगत् अस्त-व्यस्तताओं से भरा हुआ है। अपने अन्दर निवास करते चलो, जहाँ **प्रेम** बसता है।...

Mother You Said So — २९ अप्रैल १९६४

श्रद्धा की शक्ति

वस्तुतः भगवान् हर एक व्यक्ति को वही देते हैं जिसकी वह उनसे आशा

करता है। अगर तुम यह मानते हो कि भगवान् बहुत दूर और क्रूर हैं, तो वे दूर और क्रूर होंगे, क्योंकि तुम्हारे चरम कल्याण के लिए यह ज़रूरी होगा कि तुम भगवान् के कोप का अनुभव करो; काली के पुजारियों के लिए वे काली होंगे और भक्तों के लिए 'परमानन्द'। और ज्ञानपिपासु के लिए वे 'सर्वज्ञान' होंगे, मायावादियों के लिए परात्पर 'निर्गुण ब्रह्म'; नास्तिक के साथ वे नास्तिक होंगे और प्रेमी के लिए प्रेम। जो उन्हें हर क्षण, हर गति के आन्तरिक निदेशक के रूप में अनुभव करते हैं उनके लिए वे बन्धु और सखा, हमेशा सहायता करने के लिए तैयार, वफ़ादार दोस्त रहेंगे। और अगर तुम यह मानो कि वे सब कुछ मिटा सकते हैं, तो वे तुम्हारे सभी दोषों, तुम्हारी सभी भ्रान्तियों को, बिना थके, मिटा देंगे, और तुम हर क्षण उनकी अनन्त 'कृपा' का अनुभव कर सकोगे। वस्तुतः भगवान् वही हैं जो तुम अपनी गहरी-से-गहरी अभीप्सा में उनसे आशा करते हो।...

भगवान् तुम्हारी अभीप्सा के अनुसार तुम्हारे साथ हैं। स्वभावतः, इसका यह अर्थ नहीं है कि वे तुम्हारी बाह्य प्रकृति की सनकों के आगे झुकते हैं—यहाँ मैं तुम्हारी सत्ता के सत्य की बात कह रही हूँ। और फिर भी, कभी-कभी भगवान् अपने-आपको तुम्हारी बाहरी अभीप्सा के अनुसार गढ़ते हैं, और अगर तुम, भक्तों की तरह, बारी-बारी से मिलन और बिछोह में, आनन्द की पुलक और निराशा में रहते हो, तो भगवान् भी तुमसे, तुम्हारी मान्यता के अनुसार, बिछुड़ेंगे और मिलेंगे। इस भाँति मनोभाव, बाहरी मनोभाव भी, बहुत महत्त्वपूर्ण है। लोग यह नहीं जानते कि श्रद्धा कितनी महत्त्वपूर्ण है, कितना बड़ा चमत्कार है, चमत्कारों को जन्म देने वाली है। अगर तुम यह आशा करते हो कि हर क्षण तुम्हें ऊपर उठाया जाये और भगवान् की ओर खींचा जाये, तो वे तुम्हें उठाने आयेंगे और वे बहुत निकट, निकटतर, सदैव निकट होंगे।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ७८-७९

मनोवृत्ति की शक्ति

क्या सचमुच जो कुछ होता है अच्छे-से-अच्छा ही होता है?... यह तो स्पष्ट ही है कि जो कुछ हुआ है उसे होना ही था : इससे भिन्न न हो सकता था—वैश्व नियति के कारण उसे होना ही था। लेकिन यह बात

हम तभी कह सकते हैं जब वह हो चुके, उससे पहले नहीं। क्योंकि "जो हो सकता है उसमें अच्छे-से-अच्छे" की समस्या व्यक्तिगत समस्या है, यह व्यक्ति भले एक मनुष्य हो अथवा एक राष्ट्र। सब कुछ व्यक्तिगत मनोवृत्ति पर निर्भर करता है। यदि जो होने वाला है उसकी परिस्थिति में तुम अपने लिए अधिक-से-अधिक सम्भव ऊँची मनोवृत्ति अपना सको—अर्थात्, यदि तुम अपनी चेतना को अपनी पहुँच की ऊँची-से-ऊँची चेतना के सम्पर्क में ला सको तो, पूरी तरह निश्चय रखो, जो होगा वह जो हो सकता है उसमें अच्छे-से-अच्छा होगा। लेकिन जैसे ही तुम उस चेतना से निचले स्तर पर गिर पड़ो वैसे ही जो होगा वह स्पष्टतः अच्छे-से-अच्छा न होगा और कारण स्पष्ट है—तुम अपनी अच्छी-से-अच्छी चेतना में नहीं हो। मैं निश्चयपूर्वक यहाँ तक कह सकती हूँ कि हर एक के तात्कालिक प्रभाव के क्षेत्र में उचित मनोवृत्ति में इतनी शक्ति होती है कि वह हर परिस्थिति को लाभदायक बना सके, इतना ही नहीं, वह स्वयं परिस्थिति को बदल तक सकती है। उदाहरण के लिए, अगर कोई तुम्हें मारने आये, उस समय तुम यदि साधारण चेतना में रहो और डर कर होशो हवास खो बैठो तो सम्भवतः वह जो कुछ करने के लिए आया है उसमें सफल हो जायेगा; अगर तुम ज़रा ऊपर उठ सको और डर से भरे होते हुए भी भागवत सहायता को बुलाओ तो वह ज़रा-सा चूक जायेगा या तुम्हें ज़रा-सी चोट ही पहुँचा पायेगा; लेकिन अगर तुम्हारे अन्दर उचित मनोवृत्ति हो और तुम्हारे चारों ओर हर जगह भागवत उपस्थिति की पूरी चेतना हो तो वह तुम्हारे विरुद्ध उँगली भी न उठा सकेगा।

यह सत्य रूपान्तर की सारी समस्या की ठीक चाबी है। हमेशा भागवत उपस्थिति के साथ सम्बन्ध बनाये रखो, उसे नीचे उतारने की कोशिश करो —तो हमेशा अच्छे-से-अच्छी चीज़ ही होगी। पर हाँ, सारा जगत् एकदम नहीं बदल जायेगा, लेकिन वह जितनी तेज़ी कर सकता है उतनी तेज़ी से आगे बढ़ेगा। यह न भूलो कि यह तभी होगा जब तुम योग के सीधे मार्ग पर चलते रहोगे, उस अवस्था में नहीं जब तुम रास्ता छोड़ कर जिधर मुँह उठे उधर भटकते फिरो या असहाय-से बन कर अजाने जंगल में घूमते रहो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १६६-६७

अस्तव्यस्तता की घड़ियों में

अन्ततः, मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि यह अस्तव्यस्तता हमें यह सिखाती है कि प्रतिदिन हम कैसे जियें, यानी, क्या हो सकता है, क्या होने वाला है इन बातों में न फँसें, अपने-आपको प्रतिदिन उसी में लगाये रहें जो हमें करना है। सभी सोच-विचार, पूर्व योजनाएँ और संयोजन और इस तरह की चीज़ें अव्यवस्था के लिए बहुत अनुकूल हैं।

लगभग एक-एक मिनट के अनुसार जीना, उस जैसा होना *(ऊपर की ओर संकेत)*, केवल उसी चीज़ की ओर ध्यान देना जो उस क्षण की जानी है और 'सर्व-चैतन्य' को निर्णय करने देना...। हम विस्तृततम दृष्टिके साथ भी चीज़ों को नहीं जान सकते; हम चीज़ों को बहुत ही आंशिक रूप में—**बहुत ही** आंशिक रूप में जान सकते हैं। इसलिए हमारा ध्यान इस ओर, उस ओर खिंचता रहता है, और इसके अतिरिक्त और बहुत-सी चीज़ें रहती हैं। भयानक और हानिकर चीज़ों को बहुत महत्त्व देकर तुम केवल उनकी शक्ति ही बढ़ाते हो। *(श्रीमाँ ध्यान में चली जाती हैं।)*

जब इस प्रकार की अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता की कल्पनाएँ तुम पर टूट पड़ें तो तुम्हें एक ही चीज़ करनी चाहिये, उस चेतना में प्रवेश कर जाओ जहाँ तुम केवल *एक* ही 'सत्ता', *एक* ही 'चेतना', *एक* ही 'शक्ति' को देखते हो—केवल एक ही 'इकाई' है—और यह सब उसी 'इकाई' में हो रहा है। और हमारे सभी नगण्य अन्तर्दर्शन, हमारे ज्ञान, हमारे मूल्यांकन और... ये सब कुछ नहीं हैं, सबकी अधिष्ठात्री 'चेतना' की तुलना में ये बहुत ही छोटे, अणु के समान हैं। इसलिए, अगर तुम्हारे अन्दर इन विभिन्न सत्ताओं के अस्तित्व के कारण का ज़रा-सा भी ज्ञान हो तो तुम देखोगे कि यह अभीप्सा को सम्भव बनाने के लिए, अभीप्सा की सत्ता को बनाये रखने के लिए है, आत्म-निवेदन और आत्म-दान की गति को, विश्वास और श्रद्धा को सम्भव बनाने के लिए है। ठीक यही वह कारण है जिसके लिए व्यक्ति बनाये गये थे; और फिर पूरी सच्चाई के साथ, पूरी तीव्रता के साथ वह बनना... बस, यही वह सब है जिसकी आवश्यकता है।

यही एक चीज़ है जिसकी ज़रूरत है, यही **एकमात्र** चीज़ है, यही एकमात्र चीज़ है जो टिकती है; बाक़ी सब... माया-जाल, मृग-मरीचिका है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. १९५-९६

'पुरोधा'

दैनन्दिनी

जुलाई

१. प्रार्थनाएँ विश्वास से भरी होनी चाहियें और वहाँ शोक या विलाप नहीं होना चाहिये।
२. बस, एक ही अनिवार्य शर्त है—**सच्चाई**।
३. अपने काम में चुपचाप लगे रहो और अवसाद ग़ायब हो जायेगा।
४. बिना हिचकिचाये—मन और हृदय दोनों में—दूसरे का मंगल चाहना ही वह सर्वोत्तम सहायता है जो मनुष्य दूसरे को दे सकता है।
५. अगर तुम्हारे हृदय में शान्ति न हो, तुम कहीं भी शान्ति न पा सकोगे।
६. असफलता का कारण क्षमता का नहीं, बल्कि दृढ़ता का अभाव है।
७. हमारा सारा जीवन ही प्रभु को निवेदित प्रार्थना होना चाहिये।
८. हर नूतन सूर्योदय में नूतन प्रगति की सम्भावना रहती है।
९. अपने लक्ष्य को कभी मत भूलो। वह ज्योतिर्मय गरुड़ की तरह तुम्हारे सिर के ऊपर मँडराता रहे।
१०. भगवान् की ओर मुड़ो और तुम्हारा ख़ालीपन ग़ायब हो जायेगा।
११. अपनी भूलों को पहचानने से बड़ा साहस कोई नहीं है।
१२. आओ, हम एक प्रार्थना के साथ सोयें और 'नयी और पूर्ण सृष्टि' की अभीप्सा के साथ जगें।
१३. स्थिर-अचञ्चल रहो और अपने-आपको शान्ति, विश्वास और स्मित के साथ अर्पित करो।
१४. सर्दी के दिनों में तुम माँ के प्रेम को अपने कन्धों पर ओढ़ना चाहोगे क्या...!
१५. भगवान् के प्रति सतत अभीप्सा के साथ अन्तर में निवास करना—हमें जीवन की ओर मुस्कान के साथ देखने और बाहरी परिस्थितियाँ चाहे जैसी हों, शान्त रहने में समर्थ बनाता है।
१६. प्रसन्न रहो मेरे वत्स, प्रगति का यह सबसे निश्चित मार्ग है।
१७. अहंकार ही नाराज़ और बेचैन हो उठता है और यही अहंकार तुम्हारी

चेतना को धुँधला बनाता और तुम्हारी प्रगति में बाधा डालता है।

१८. अवसाद हमेशा विवेकहीन होता है और तुम्हें कहीं नहीं ले जाता। वह योग का सबसे सूक्ष्म शत्रु है।

१९. श्रीअरविन्द ने बहुत बार लिखा है कि मनुष्य अपने दुःख से, अपनी तुच्छता, अपनी दुर्बलता, अपने अज्ञान और अपनी सीमाओं से चिपका रहता है—इसी कारण वह बदल नहीं पाता।

२०. हमेशा सुखी रहना, मेघविहीन और उतार-चढ़ाव-रहित सुख—अन्य सभी चीज़ों की अपेक्षा इसे पाना सबसे ज़्यादा कठिन है।

२१. अगर हम अपने सुख को अक्षुण्ण और पवित्र रखना चाहें तो हमें उसकी ओर प्रतिकूल विचारों को आकर्षित न करने पर पूरा ध्यान देना चाहिये।

२२. हम भागवत मुस्कान का ध्यान तभी कर सकते हैं जब हम अन्धकार पर विजय पा लें।

२३. मानसिक प्रसन्नता : वह हर चीज़ में आनन्द लेना जानती है।

२४. सामञ्जस्य प्रकट करने के लिए सरलता सबसे अच्छी चीज़ है।

२५. कभी ज़ोर न डालो और कभी जल्दबाज़ी न करो। तुम्हारे पास जितना समय हो उसमें—ज़ोर डाले **बिना**—अचञ्चलता के साथ शान्त प्रवाह में काम करो।

२६. भागवत कृपा पर ज़्यादा मुस्कुराता हुआ विश्वास निश्चय ही तुम्हें जल्दी ही शान्ति और आनन्द की ओर ले जायेगा।

२७. अपने सुख के बारे में व्यस्त रहना दुःखी होने का सबसे निश्चित उपाय है।

२८. सरल और शान्त हृदय तथा स्थिर मन के साथ अपना काम जारी रखो। अभीप्सा आवश्यकता के अनुसार धीरे-धीरे आयेगी।

२९. जब तक तुम दोषों को दोहराते रहते हो कुछ भी मिटाया नहीं जा सकता, क्योंकि प्रत्येक मिनट तुम उसे नया कर देते हो।

३०. आरामदेह नींद और एक मधुर मुस्कान सूरज की उस किरण के समान है जो सभी बाधाओं को पिघला देती है। एक मधुर मुस्कान प्रत्येक दुर्भावना को वैसे ही पिघला देती है जैसे सूरज मक्खन को।

३१. अगर कोई सदा मुस्कुरा सके तो वह सदा युवा रहता है।

मस्तीभरे दिनों की ख़्वाहिश है...

कहाँ गये वो दिन
वो बचपन के मीठे पल-छिन
जब न खाने में मिलावट थी
न रिश्तों में बनावट थी...
जब काग़ज़ की नाव में बैठ कर
दुनिया की करते थे सैर
जब अपने ही घरों में
हमारे न टिकते थे पैर...
जब आसमान में उड़ते थे
लहरा के पतंग-जैसे
जीवन का हर पल होता था
होली का रंग-जैसा।
जब दीवाली की मिठाई
अब्दुल के घर जाती थी
और सलमा बड़े प्यार से
सेवइयाँ खिलाती थी
डिसूज़ा के यहाँ से जब
केक की ख़ुशबू आती थी
जब हर दिन एक त्योहार होता था
औ' ज़िन्दगी लगातार ख़ुशियाँ मनाती थी।
जब घर छोटे होते थे
पर रिश्तों में गहराई थी
जब सारी दुनिया हमारे
आस-पास समायी थी
जब ख़तों के ज़रिये
बयाँ होते थे अफ़साने
कभी कई मील चल कर
यारों से मिलने जाते थे।

अब बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ हैं
लेकिन जाने से अब कतराते हैं।
ज़िन्दगी से जैसे ज़िन्दगी बिछुड़ गयी
मुस्कुराहट के फूल बिखर गये
बहारों की महफ़िल उजड़ गयी।
एक बार फिर उन्हीं
भोले, मस्ती-भरे दिनों की ख़्वाहिश है;
फिर से बच्चे बन जायें सब
बस इतनी सी गुज़ारिश है,
बस इतनी सी गुज़ारिश है...।

('इंटरनेट' से साभार)

'सौ प्रतिशत ख़ुश रहो'...

(इस अंक के शीर्षक 'कभी निराश मत होओ' पर सटीक बैठती है बारह-तेरह साल पहले पत्रिका में आयी यह कहानी। अतः, उस अंक से हूबहू उतर आयी है वह इस अंक में।)

आजकल 'कम्प्यूटर' के ज़माने में 'अग्निशिखा' की सम्पादिका को यह एक लाभ ज़रूर मिला है कि लोग-बाग, इष्टजन ऐसे मार्के की सुन्दर-गभीर-सच्ची घटनाएँ या कहानियाँ 'फ़ॉरवर्ड' कर देते हैं कि जी भर आता है; उन्हें पत्रिका के पाठकों को पढ़ाने का लोभ जाग उठता है। यह रही अज्ञात लेखक की ऐसी ही एक अभिनव कहानी जिसमें सम्पादिका ने अपनी कल्पना के ढेरों मनके पिरो दिये हैं, लेकिन मूल कहानी के एक भी मोती को बिखराया नहीं।

मैं हूँ अपने गाँव में एकमात्र पशु-चिकित्सिक—इसलिए अनगिनत पशु मेरे हाथों से गुज़रे हैं, अनगिनत ख़ुशियों और रुदन का साक्षी रहा हूँ मैं, क्योंकि कितनों को ठीक कर पाया तो कइयों को सूई देकर चिर निद्रा में सुलाना भी पड़ा...। मालिक के लिए अपना पालतू जानवर बिलकुल बच्चे-जैसा होता है; उसे हँसता-खेलता देख घर ख़ुशनुमा रहता है और उसके बिछुड़ने पर सभी सदस्यों के ऊपर महीनों मातम छाया रहता है

—ख़ासकर बच्चों पर। ऐसे ही एक पालतू कुत्ते की कहानी है यह; नाम था उसका बेल्कर—जी हाँ, बाहरवालों के लिए। घर पर तो रॉन, उनकी पत्नी लीज़ा, उनके सात साल के बेटे शेन तथा कुत्ते के चिकित्सक, यानी मेरे लिए वह था सिर्फ़ 'बेकी'। शेन के जन्म के पहले से ही बेकी उस घर का सदस्य था और चिकित्सक के नाते मैं भी मिलनसार रॉन परिवार से घुल-मिल गया था। और इसीलिए बालक शेन की पहली किलकारी, पहली रूठ, पहले बोल, पहले-पहल चलना-दौड़ना, विद्यालय जाना—सभी का साक्षी रहा था बेकी, और शेन के लिए तो वह बड़ा-सा कुत्ता उसका ऐसा पिछलग्गू रखवाला-साथी था जो, अगर उसका बस चलता तो अपने मानव-मित्र के साथ विद्यालय जाकर उसकी कक्षा में भी पढ़ आता!! एक तरह से पढ़ता ही था—शेन उसे दुनिया-भर की बातों के साथ-साथ विद्यालय का एक-एक सबक सुनाता जो था! और सुनने वाला भी लगता था कि गुटरगूँ बैठा-बैठा सब कुछ अपनी बड़ी-भूरी आँखों से पिये जा रहा हो!!

सचमुच, अनूठा था शेन और बेकी का रिश्ता—एकदम जुड़वाँ भाइयों का-सा। शेन को हलकी-सी हरारत होती, ज़ुकाम से नाक बहने लगती, खेल में घुटना-कोहनी छिल जाते तो चिन्ता झलकती बेकी की आँखों में; उधर बेकी की तबीअत ज़रा नरम पड़ती नहीं कि शेन फ़ौरन आकर मेरे दरवाज़े की कुण्डी खटखटाता।

बेकी बहुत ही उम्दा नस्ल का गबरू कुत्ता था—बड़ा दमदार, बेहद फुर्तीला, लेकिन उम्र के बढ़ने के साथ-साथ उसकी ताक़त घटने लगी, रोएँ झड़ने लगे, हँफनी चढ़ने लगी और चिकित्सक की हैसियत, मेरा शेन के घर जाना बढ़ने लगा और बढ़ता ही चला गया...।

शेन के सबसे प्यारे दोस्त के दिन नज़दीक आ रहे थे, उसकी तेज़ी से गिरती हालत और अन्दरूनी पीड़ा का अन्दाज़ा लगा मैंने उस शाम शेन को अपनी गोदी में बिठाल, पुचकार कर उसे भावी का परदा उठा कर दिखाना चाहा—"बेटे, तुम जानते ही हो कि कुत्तों की ज़िन्दगी हमारी-तुम्हारी ज़िन्दगियों से बहुत छोटी होती है, और तुम्हारा यह बेकी तो तुमसे भी बहुत बड़ा है न?..."

"हाँ, और अंकल..." शेन ने मेरी ही बात का सिरा पकड़ते हुए कहा, "यह न मेरे साथ अब दौड़ सकता है, न कूद सकता है, न लुका-छिपी

खेल सकता है और न मेरी उछाली गेंद को मुँह में दबोच ही सकता है... आपका यहाँ इसके लिए रोज़-रोज़ आना ही यह दिखलाता है कि मेरा बेकी अब कुछ ही रोज़ का मेहमान है, या फिर उतना भी नहीं..." शेन की आँखें डबडबाने लगीं, मेरी गोदी से उतर, वह ज़मीन पर एकदम-से निढाल पड़े बेकी से जा सटा।

सात साल के बच्चे को इतना सब पता है, फिर भी वह फूट-फूट कर नहीं रो रहा... उलटा, वह मुझे ही समझाने लगा, "डॉक्टर अंकल, अगर मेरे बेकी को कोई ऐसी जानलेवा बीमारी है जिसमें वह तड़प-तड़प कर दम तोड़ेगा तो मैं चाहता हूँ कि आप उसे सूई दे दें।" मेरी आँखें फटी-की-फटी, मुँह खुला-का-खुला रह गया। जिस बात का ज़िक्र घर के सदस्यों से चिकित्सक भी करने से अन्तिम समय तक कतराते हैं उसे सात साल का यह बच्चा, जिसकी जान अपने कुत्ते में ही बसती है, ऐसी सरलता से मुझे समझा गया!! मैंने शेन के माता-पिता की ओर नज़र घुमायी, वे भी सकते में थे, मैंने शेन को ग़ौर से देखा, पहली बार किसी इतने छोटे बच्चे के मुँह से मैं ऐसी बात सुन रहा था। ऐसे मामलों में तो माता-पिता को दुःख से टूटते अपने बच्चों को कलेजे से लगा-लगा कर, कई-कई दिनों तक ढाढ़स बँधाना पड़ता है...। लेकिन शेन के हृदय की गहराई उसकी बेबाक नज़रों में उतर आयी थी। मेरी आँखों-में-आँखें डाल वह बोला, "जानता हूँ कि अपनी गोदी में बिठा कर आप मुझे यही समझाना चाहते थे। बस डॉक्टर अंकल, मैं इतना ही चाहता हूँ कि जब आप मेरे बेकी को भगवान् के पास भेज रहे हों तो उसका सिर मेरी गोद में हो...।"

कमरे में सूईटपक सन्नाटा उतर आया! उम्र में घर का सबसे छोटा सदस्य, वयस्कों का वयस्क बन हमारे सामने खड़ा था! माँ ने बच्चे को बाँहों में भर लिया, पिता ने उसका ललाट चूम लिया। मैंने बच्चे को कृतज्ञता-भरी नज़रों से देखा। जो बात मेरे गले में गिल्टी बन कर अटकी हुई थी, उसे यह नन्हा कितनी आसानी से समझ गया, दो टूक कह गया!

"बेटे, बेकी की हालत सचमुच गम्भीर है..."

"तो अंकल, आज रात मैं भगवान्जी से प्रार्थना करता रहूँगा कि कल सवेरे वे बेकी को मेरी गोद से समेट कर अपनी गोद में सहेज लें...।"

उसी सन्नाटे से कमरा फिर घिर गया। हम चारों बेकी को घेर कर

बैठ गये, चुपचाप प्रार्थना करते रहे, शेन के साथ जैसे-जैसे प्रार्थना में गहरे उतरते गये, कमरे का भारीपन, हमारे हृदयों पर ठहरा दुःख का बोझ सरकने लगा। आँखें खुलीं तो हम सबके अन्दर एक नयी स्फूर्ति थी, नया साहस था, दुःख को दुःख के नज़रिये से न देखने की शक्ति थी—यह सब था उस नन्हें बच्चे की बदौलत जिसकी आँखों में प्रार्थना के बाद ऐसी चमक बस गयी थी, चेहरा ऐसा दमक रहा था मानों उसने मृत्यु की गुत्थी सुलझा ली हो।

भरे दिल से मैं उस शाम शेन के घर आया था और भरे ही दिल से वापस लौट रहा था, लेकिन ज़मीन-आसमान के फ़र्क के साथ।

अगली सुबह मैं निश्चित समय पर शेन के घर पहुँच गया। घर का वातावरण गम्भीर था। पिछली शाम ही की तरह हम चारों बेकी के पास ज़मीन पर बैठ गये। शेन ने हौले से उसका सिर अपनी गोदी में रखा, माता-पिता ने प्यार से बेकी के सिर पर हाथ फेरा और बेकी ने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोल कर उन तीनों को ऐसी ममतामयी, मुस्कुराती दृष्टि से देखा कि कमरे की दीवारें भी मोम बन गयीं।

... गभीरतम मूक प्रार्थनाओं से घिरे बेकी ने अपनी अन्तिम साँस शेन की गोद में भरी...। बाँध टूटे बिना चुपचाप आँसू बहे। सात साल के बच्चे की गरिमा सारे घर पर छायी हुई थी...

सच, मैंने ऐसा पहले कभी नहीं देखा। बालक शेन को मैंने उसके जन्म से देखा, जाना, सामान्य चुलबुला बच्चा ही माना, लेकिन उसके इस व्यवहार ने तो हम सबको चौंका दिया—बेकी के देहावसान के अगले ही दिन से वह अपनी सामान्य दिनचर्या में रम गया, जब कि रॉन और लीज़ा को सँभलने में वक़्त लग रहा था। मैं रोज़ सुबह-शाम उनके घर जाता और चकित रह जाता। हम तीनों शेन के ऐसे व्यवहार पर हैरान, परेशान भी थे कि जिस दोस्त के साथ उसका पल-पल गुज़रता था उसको वह पल-भर में भुला बैठा क्या? घबराहट हम तीनों को इस बात की हो रही थी कि सात साल के इस दार्शनिक ने कहीं ज़बरदस्ती अपने ऊपर झूठी ख़ुशी का यह लबादा तो नहीं लाद लिया...! मैं रॉन से कहता, "भाई, बड़े तो ऐसा करते हैं, लेकिन बच्चे...???"

उसी बच्चे ने हफ़्ते-भर बाद हमें यह कह कर और चौंका दिया, "जानते

हैं मम्मा-पापा, अंकल! बेकी ने मुझे छोड़ा कहाँ है, वह तो पहले ही की तरह मेरे साथ रहता है।"

"हे भगवान्! हे भगवान्!" मैं सिर पकड़ कर बैठ गया। पशु-चिकित्सा के साथ-साथ मैंने बाल-मनोविज्ञान भी पढ़ा था। कच्ची उम्र में इस बच्चे ने अपने चारों तरफ़ एक ऐसा मायाजाल रच लिया है कि यह इसके लिए बड़ा ख़तरनाक हो सकता है। मैंने ज़ोर दे-देकर कहा, "नहीं, नहीं, शेन बेटे! तुम अच्छी तरह जानते हो कि बेकी भगवान्जी के पास चला गया है। उसे इस तरह अब अपने साथ घूमते-खेलते मत देखो।"

शेन खिलखिला उठा, "अरे, डॉक्टर अंकल, आप जैसा सोच रहे हैं वैसा थोड़े ही है। मैं जानता हूँ कि अब वह मेरी तरह इस दुनिया में नहीं है। मैं उसे बाहर छू नहीं सकता, कूदते-फाँदते देख नहीं सकता, अपने हाथों से खिला नहीं सकता, लेकिन अपने अन्दर मैं उससे बातें कर सकता हूँ, उसे देख सकता, महसूस कर सकता हूँ। और वह वहाँ बहुत ख़ुश है, क्योंकि भगवान्जी उसे लेकर मेरे अन्दर ही तो बैठे हैं...।"

न केवल मैं, रॉन और लीज़ा, बल्कि उस घर का कोना-कोना शेन के सामने निरुत्तर, बौराया-सा रह गया।

रॉन और लीज़ा के घर सचमुच एक नन्हा फ़रिश्ता पल रहा था। बेकी के दुनिया छोड़ने के ठीक महीने-भर बाद उस शाम उसने हमसे जो कहा वह मानव नहीं, देववाणी थी।

"आप लोगों को पता है कि बेकी इस धरती से इतनी जल्दी क्यों चला गया?" कोई इस सवाल के लिए तैयार न था। शेन ही बोलता रहा, "उस रोज़ आपने मुझसे कहा था न डॉक्टर अंकल कि कुत्तों की ज़िन्दगी हमारी ज़िन्दगी से बहुत छोटी होती है, लेकिन जानते हैं क्यों? आप जानते हैं मम्मा-पापा क्यों?"

हम तीन क्या, किसी भी बड़े के बूते के बाहर था इस सवाल का जवाब देना। हम बुत बने बैठे थे, बैठे रहे...।

और उस नन्हें फ़रिश्ते ने जो कहा वह यह था—

"मनुष्य इसलिए जन्म लेते हैं कि यह सीख सकें कि अच्छा, सीधा-सादा, सरल जीवन कैसे बिताया जाये—जैसे, हमेशा हर एक को प्यार देना, हमेशा हर एक का भला करना और ऐसी कई सारी चीज़ें सीखना, इन सब

चीज़ों को सीखने के लिए उन्हें लम्बी ज़िन्दगी की ज़रूरत होती है, ठीक है न? जब कि कुत्ते इन सीधी-सच्ची-सरल बातों को पहले से ही जानते हैं, और उन्हें धरती पर बहुत सालों तक रहने की कोई ज़रूरत ही नहीं है।"

निस्तब्धता...

"कल मैं यही सब सोच रहा था कि अपना बेकी जितने साल हमारे साथ रहा हमें सुखी-सन्तुष्ट जीवन के सरल रहस्य बतला गया। वह मुझे क्या-क्या नहीं सिखला गया :

—जब अपने लोग घर वापस आयें तो हमेशा अपनी पूँछ को ख़ुशी का पंखा बना उन्हें झलते रहो, उनके पैरों से लिपट जाओ, उनको चूमने के लिए उछल-कूद मचाओ—अपनों का ऐसा स्वागत दिन-भर की उनकी सारी थकान, चिड़चिड़ाहट को छूमन्तर कर देगा।

—जब कभी कोई तुम्हें बाहर घुमाने को तैयार हो तो झपट लो उस अवसर को। ताज़ी हवा से भर लाओ अपने तन-मन को।

—ख़ूब कूद-फाँद करो। खेल के किसी भी अवसर को कभी न चूको।

—जब हलकी घुड़की से काम चल जाये तो भौंको मत।

—ख़ुशी में नाचो, गोल-गोल घूमो। देखना, तुम्हारी ख़ुशी दूसरों को छूत की तरह लग जायेगी।

—ख़ूब चाव के साथ खाओ। जैसे ही पेट भर जाये, मुँह खींच लो।

—वफ़ादार बनो। जो तुम हो वही बने रहो। कुछ और होने का ढोंग मत रचो।

—जो तुम चाहते हो अगर वह ज़मीन में गड़ा हो तो तब तक खोदना न छोड़ो जब तक तुम उसे पा न लो।

—जब किसी अपने का दिन बुरा गुज़र रहा हो तो चुपचाप उससे सट कर बैठ जाओ, फिर आहिस्ता-आहिस्ता उसे सहलाओ।

यानी : सादगी से रहो। प्रेम बाँटने में कभी कोताही मत करो।

सबसे गहरी सहानुभूति रखो। हमेशा मीठे बोल बोलो।

और सबसे बड़ी बात—सौ प्रतिशत ख़ुश रहो।"

बालक-फ़रिश्ते द्वारा सिखाये जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण पाठ के बाद इस कहानी में अब एक भी शब्द न हम जोड़ सकते हैं, न आप...।

—वन्दना

हमेशा सभी परिस्थितियों में मुस्कुराना सीखो; अपने दुःखों और सुखों पर, अपनी पीड़ाओं और अपनी आशाओं पर मुस्कुराना सीखो, क्योंकि मुस्कान में आत्म-संयम की परम शक्ति है।

श्रीमाँ

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

With best compliments from:

AURO MIRRA INTERNATIONAL SCHOOL,

110, Gangadhar Chetty Road,
Ulsoor, Bangalore-560042
Email:accounts@auroschoolsulsoor.org
www.auroschoolsulsoor.org

AURO MIRRA CENTRE OF EDUCATION

An Integral School,
SSST Nagar, Patiala
E-mail: auromirrapta@gmail.com

SRI AUROBINDO INTERNATIONAL SCHOOL

(A Senior Secondary School)
Sri Aurobindo Marg,
Rose Garden-Bus Stand, Patiala
E-mail: auroschoolpta@gmail.com

Date of Publication: 1st July 2023
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70